सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-282002 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 45, अंक : 5, अगस्त 2012

अमृत कण

चला लक्ष्मीश्चला: प्राणाश्चले जीवित शेवनम्।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चल:।।

(चाणक्यनीति दर्पण)

अर्थात् इस चराचर जगत में लक्ष्मी (धन सम्पदा), प्राण यौवन और जीवन(आयु) – सब चलायमान और नश्वर हैं, केवल एक धर्म ही निश्चल और शाश्वत है जो सदा साथ रहता है और मृत्यु के बाद भी साथ जाता है। अत: सुख प्राप्ति के लिए हमें धर्म का आचरण करना चाहिए। पापाचरण कदापि नहीं।

* * *

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च।।।

(कठोपनिषद् 2/2/9)

अर्थात् जिस प्रकार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रविष्ट एक ही अग्नि नाना रूपों में उनके समान रूप वाला सा हो रहा है, वैसे ही समस्त प्राणियों का अन्तरात्मा परब्रह्म एक होते हुए भी नाना रूपों में उन्हीं के जैसे रूप वाला हो रहा है और उनके बाहर भी है।

* * *

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।।

(गीता 5/29)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपों का भोगने वाला सम्पूर्ण लोकों के ईश्वर का भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूतप्राणियों का सुहृद् अर्थात् स्वार्थ रहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्व से जानकर शान्ति को प्राप्त होता है।

* * *

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 45 अगस्त 2012 अंक : 5

नमस्ते देवदेवाय ब्रह्मणे परमेष्ठिने।
पुरुषाय पुराणाय शाश्वताय जयाय च।।
नमः स्वयम्भुवे तुभ्यं स्रष्टे सर्वार्थवेदिने।
नमो हिरण्यगर्भाय वेधसे परमात्मने।।
नमस्ते वासुदेवाय विष्णवे विश्वयोनये।
नारायणाय देवाय देवानां हितकारिणे।।

देवाधिदेव, पुराण पुरुष, सनातन, जयस्वरूप परमेष्ठी ब्रह्म को नमस्कार है। सृष्टि करने वाले तथा सभी अर्थों के ज्ञाता स्वयंभू ! आपको नमस्कार है। हिरण्यगर्भ, वेधा, परमात्मा को नमस्कार है। विश्व के उत्पत्ति स्थान, देवों के हितकारी, वासुदेव, नारायणदेव विष्णु को नमस्कार है।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	वे तब भी रक्षा करते है, जब हम उन्हें भूले रहते हैं – प्रकाशचंद शर्मा	12
4.	गीतामृत–पदावली	16
5.	योगआसन – वृक्षासन	19
6.	आश्रम समाचार – हेमराज चोपड़ा	21
7.	मानव जीवन के विकास के आध्यात्मिक सूत्र – रुद्रदत्त चतुर्वेदी	22
8.	कैसे–कैसे करते वो कमाल – विजय कुमार शर्मा	24
9.	सच्चे योगी बनें – डॉ. हीरा लाल लोहिया	25
10.	शरीर का कारण मन है...	28
11.	हमारी आध्यात्मिकता – डॉ. शंकर दत्त ओझा	31
12.	आध्यात्मिक प्रगति – प्रो. ऋषिराम शर्मा	34

एक प्रति	: रु.	11.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	150.00
द्विवार्षिक	: रु.	280.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु.	900.00

• विशेष लेख

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग–योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

संसार में जन्म लेने वाले सभी प्राणियों की मतियाँ भिन्न–भिन्न होती हैं और अपनी मति के अनुसार ही हर व्यक्ति उपासना के मार्ग में निकलता है। किन्तु फिर भी एक प्रश्न उपासक के सामने बना रहा करता है कि गुरुदेव क्या हैं और कितने शक्तिशाली हैं? साधारण रूप से इसका उपसंहार तो इसी के अन्दर हो जाता है।

मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रिजगद्गुरुः।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः।।

अर्थात्– साधक को चाहिये कि वह अपने इष्टदेव को सकल अंड–ब्रह्माण्डों का नायक समझे और अपने गुरुदेव को तीनों लोकों का गुरु समझे, प्राणी मात्र के अन्दर ओत–प्रोत रहने वाले दिव्य चेतना को अपना ही आत्मा माने। यह साधक की अपनी धारणा है।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।

अर्थात्–परमात्मा का स्वरूप श्रद्धामय है। जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही वह बन जाता है। भारतवर्ष का श्रद्धामय–इतिहास यह प्रमाणित करता है कि श्रद्धावान पुरुषों ने अपनी श्रद्धा के बल से पत्थरों से ईश्वर को प्रकट कर लिया, धन्ना जाट आदि की कथायें भक्त चरित्रों के अन्दर बड़े उत्साह के साथ गाई जाती हैं। धन्ना जाट काश्त करने वाला साधारण व्यक्ति था, उसको केवल मात्र बहलाने के लिये किसी पंडित ने कह दिया कि तुम्हारे हाथ में जो टुकड़ा है इसके अन्दर श्री श्यामसुन्दर छिपे हुए हैं। उसके मन में पूर्ण परिपक्व निष्ठा बनी और उस पत्थर के टुकड़े में से जगदाता अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को ढूंढ निकाला। यह श्रद्धा का ही उत्तमोत्तम परिणाम है। धन्ना के अतिरिक्त और भी अनन्त कथायें हैं। जिन्होंने श्रद्धा के आधार पर सब कुछ पा लिया है। इसलिये ''**मन्नाथस्त्रिजगन्नाथो**'' की धारणा करके साधक अपने इष्टदेव को सर्वथा पूज्य मान ही सकता है।

तात्त्विक बात

किन्तु तात्त्विक बात क्या है? इसके विषय में कुछ विचार कर लेना परम आवश्यक है। जिस समय हम रामायण को उठाकर अध्ययन करते हैं तो उस समय देखते हैं कि भगवान शिव के आराध्यदेव श्री रामचन्द्र जी हैं। इसके लिये सबल प्रमाण है–सती का वह उपाख्यान जिसके कारण भगवान सदाशिव ने उनका परित्याग कर दिया था। उनका अपराध इतना ही था कि उन्होंने भगवान शिव की अर्धांगिनी होते हुए श्री रामचन्द्र जी के ईशत्व की परीक्षा के लिए कृत्रिम

सीता का रूप बना लिया। भगवान शिव को यह स्वीकार न हुआ और उन्होंने सती का परित्याग इसलिये कर दिया क्योंकि उन्होंने उनके आराध्यदेव श्री रामकी पत्नी सीता का रूप धारण किया था, जिसको वे मातृ भावना से देखते थे।

इस छोटी सी भूल का इतना बड़ा परिणाम भगवती सती को भोगना पड़ा कि जब तक उन्हें पार्वती रूप से भगवान शिव ने अंगीकार नहीं किया तब तक उन्हे घोर तप करना पड़ा और जब तक सती का शरीर रहा तब तक वे परित्यक्ता ही रही। अर्धांगिनी रूप से उनका मिलन फिर सती स्वरूप में न होकर दूसरा जन्म धारण करने पर पार्वती रूप से हुआ। पुराणों की इस कथा से यह आभासित होता है कि श्रीराम, भगवान शिव के आराध्यदेव है। उधर पद्मपुराणान्तर्गत दूसरा प्रकरण मिलता है। भगवान श्री राम को, जबकि सीता हरण हो गया, घोर दुःख हुआ व उन्होंने दण्डकारण्य में रहकर भगवान सदाशिव का सहस्त्र नाम जपते हुए व पर्णाहार करते हुए या केवल जल का ही आधार लेकर वर्षों तक घोर तप किया। परिणाम स्वरूप भगवान सदाशिव प्रगट हुए। भगवान शिव के प्रगट होने का विषद वर्णन शिव गीता में मिलता है। पहले एक बड़ा भारी महान शब्द सुनाई दिया। धीरे-धीरे प्रकाश हुआ और उस महान प्रकाश के अन्दर जगदम्बा पार्वती सहित भगवान सदाशिव विराजमान थे। भगवान सदाशिव ने प्रगट होकर श्रीराम को पाशुपत अस्त्र प्रदान किया और उनको आश्वासन देते हुए कहा:-

इदं पाशुपतं दिव्यं प्रगृहाण रघूद्भव।
एतदासाद्य पौलस्त्यं जहि मा शोकमर्हसि।।

हे राम! तुम यह पाशुपत अस्त्र ग्रहण करो इसको लेकर तुम रावण को मारो तुम चिन्ता के लायक नही हो। परिणामस्वरूप भगवान शिव से वरदान प्राप्त कर श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और घोर युद्ध के साथ रावण को पराजित करके व उसके मृत हो जाने के बाद उसके भाई विभीषण को राज्य सौंपकर सीता को वापस ले आये। जिस समय श्री राम ने लंका पर चढ़ाई की और सेतुबन्ध बनाना आरम्भ किया उससे पहले उन्होंने अपने आराध्यदेव भगवान सदाशिव की प्रतिष्ठा समुद्र किनारे की एवं भगवान शिव की आराधना करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर लंका पर चढ़ाई की और संग्राम में विजय प्राप्त की। लंका के संग्राम के बाद जिस समय श्रीराम पुष्पक विमान से लौट रहे थे उस समय अपनी सहधर्मिणी सीता को अपने वनवास में रहने के स्थानों को दिखलाया। उसमें विशेष रूप से भगवान शिव की जहाँ आराधना की गयी थी उस स्थान को दिखलाते हुए श्रीराम ने कहा-

"अत्र पूर्व महादेवः प्रसाद मकरोद्विभुः।"

अर्थात् हे सीता यह वह स्थान है जहाँ पर भगवान महादेव जी ने मुझ पर कृपा की थी। इस प्रकरण के पढ़ने से यह पूरी तरह आभासित होता है कि भगवान सदाशिव श्रीराम के आराध्य देव है। इसी प्रकार जब हम श्रीकृष्ण चरित्र का अध्ययन करते है तो उनके गोकुल में बाललीला के समय में भगवान शिव दर्शनार्थ आते है और उन्हें अपना इष्टदेव बतला करके

यशोदा जी से प्रार्थना करके दर्शन करते हैं। द्वारिका वास के समय में रुक्मिणी से पुत्रोत्पत्ति के निमित्त उपमन्यु ऋषि से दीक्षा ग्रहण करके भगवान श्रीकृष्ण ने बारह साल तक घोर तप किया। परिणामस्वरूप उनके घर में रुक्मिणी के गर्भ से प्रद्युम्न का जन्म हुआ। इसके साथ–साथ भगवान श्रीकृष्ण द्वारा नित्य नियम से भगवान शिव का पार्थिव पूजन का वर्णन पुराणों में मिलता है। एक बार माध्यान्हिक नित्यकर्म में भगवान श्रीकृष्ण लगे हुए थे। उसी समय मार्कण्डेय आदि मुनि भगवान श्रीकृष्ण के दर्शनार्थ आये। उस समय भगवान श्रीकृष्ण शिव का पूजन कर रहे थे। मार्कण्डेय आदि मुनियों ने श्रीकृष्ण की शिव उपासना को देखकर बड़े आश्चर्य के साथ श्रीकृष्ण से ही यह प्रश्न किया–

त्वं विष्णुः कमलाकान्तः परमात्मा जगद्गुरुः।
तव पूज्यः कथं शम्भूरेतत् सर्वं वदास्मान्।।

अर्थात्–हे श्रीकृष्ण ! तुम स्वयं परमात्मा जगदगुरु विष्णु हो तुम्हारे पूज्य भगवान शिव किस प्रकार हैं यह बात हमारी समझ में नहीं आयी। इसलिये हमें स्पष्ट खोलकर समझाओ कि भगवान सदाशिव तुम्हारे आराध्यदेव किस प्रकार हैं? भगवान श्रीकृष्ण ने इसका उत्तर दिया हे मुनि मार्कण्डेय! यद्यपि तुम तात्विक बात को जानते हो फिर भी तुमने लोकहित के विचार से जो प्रश्न किया है उसका उत्तर तुम्हें समझाकर बतलाता हूँ। जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ उसका वर्णन सावधान होकर सुनो।

ज्योतिर्यत् परमानन्दं सावधानमतिः श्रृणु।
वामांगादभवत्तस्य सोहंविष्णुरिति स्मृतः।।
जनयामास धातारम दक्षिणांगात्सदाशिवः।
मध्यतो रुद्रमीशानं कालात्मा परमेश्वरः।।
तपस्तपन्तु भोवत्सा इति तानब्रवीच्छिवः।

अर्थात्–जिस परमानन्द ज्योति की मैं आराधना करता हूँ वह भगवान महादेव जी हैं। मैं उनके वाम भाग से पैदा हुआ इसलिये विष्णु नाम से विख्यात हूँ। उन्होंने अपने दक्षिण भाग से ब्रह्मा जी को पैदा किया और मध्य से रुद्र जी को पैदा किया और हम सब की उत्पत्ति हो जाने के बाद भगवान जी ने आज्ञा दी कि हे पुत्रो तुम तप करो। इस से यह मालूम पड़ता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों के मूल कारण कोई और ही हैं और वह सत्ता उनसे आगे की है।

श्री देवी भागवत आदि पुराणों के अन्दर कुछ और ही प्रकार की कथायें मिलती हैं।

एक बार ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों देव घूमते हुए किसी दिव्य लोक में जा निकले, वह लोक बड़ा दिव्य था, जिसको ये लोग पहले जानते ही नहीं थे। जब उस लोक में ये आगे बढ़ते ही चले गये तो एक दिव्य मन्दिर के अन्दर दिव्य सिंहासन पर विराजमान अष्टभुजी महामाया भगवती दुर्गा को देखा। ज्यों ही इन सबने भगवती का दर्शन प्राप्त किया तो ये सब युवक स्त्रियाँ

बन गये। जब अपने आप की यह स्थिति देखी तो स्वयं विष्णु भगवान ने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक देवी की स्तुति की। इन सबने हाथ जोड़कर कहा।–

हे माता! हमने यहा आकर के यह जान लिया कि सृष्टि की उत्पत्ति और प्रलय तुम से ही होती है। हमने इस लोक में आ करके हरि और ही देखे। इसी प्रकार शिव और ब्रह्मा और ही थे। इससे यह ज्ञात होता है कि और भुवनों में भी ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ही होंगे। हे माता! हम तेरे महान प्रभावों को नहीं जान सके। इस प्रकरण से यह ज्ञात होता है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव से भी परे और तत्व है, जिस तत्व की ये स्वयं आराधना करते है। श्री महाभारत में युद्ध के उपरान्त गीता के प्रकरण में अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से प्रार्थना की कि हे प्रभो! आपने युद्ध के समय जो गीता सुनाई थी वह अब मुझे पूरी–पूरी तरह याद नहीं है इसलिये कृपा करके मुझे गीता का उपदेश दुबारा कर दीजिये। अर्जुन की ऐसी प्रार्थना सुनकर श्री कृष्ण ने उत्तर दिया कि अर्जुन! तुमने यह बड़ी भारी भूल की कि उस परमोदेश को भुला दिया –

न शक्यस्तन्मया भूयः तथा वक्तुमशेषतः।

परंहि ब्रह्म कथितं योग युक्तेन तन्मया।।

अर्जुन तुमने उस उपदेश को भुला दिया यह बहुत भारी गलती की। यह उपदेश मैंने योग युक्त होकर दिया था। इसलिये यह स्वयं परब्रह्म का ही उपदेश था। अतः वह पवित्र ज्ञान जैसा का तैसा अब मुझसे भी नहीं कहा जा सकता।

इस प्रकरण को पढ़ करके भी कृष्ण का योग युक्त होकर उपदेश देना स्थिति का तारतम्य बतलाता है। इन सभी प्रकरणों से यह प्रगट होता है कि श्रीराम के रूप में श्रीशिव ने व कभी शिव के रूप में श्रीराम ने किसी और ही तत्व की उपासना की थी जो परात्पर है और सर्वतोवन्द्य है, सभी ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि देवता उसी परब्रह्म के प्रतीक मात्र है और वह सत्ता उनसे भी परे है। हमारे शास्त्रों में व पुराने इतिहास में श्रीगुरुदेव की बहुत बड़ी महिमा लिखी है और उसका अन्तिम निष्कर्ष यह दिखलाया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव सभी देव उस तत्व की आराधना से ही ब्रह्मा–विष्णु–शिव हैं। अन्यथा सर्वसाधारण मनुष्यों जैसे मनुष्य ही है।

गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मा–विष्णु–महेश्वराः।

सामर्थ्य तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।

ये सभी प्रकरण यह प्रगट करते है कि यह कोई अव्यक्त सत्ता है। जो सभी देवों को प्रकाश देने वाली है और इसकी आराधना से ही मनुष्य परम श्रेय को प्राप्त हो सकता है। उपनिषदों में विशेषतः ब्रह्म विद्योपनिषद में सीधे शब्दों में स्पष्ट कहा गया है:–

वेदशास्त्राणि चान्यानि पदपांसुमिव त्यजेत्।।

गुरुभक्तिः सदा कुर्याच्छ्रेयसे भूयसे नरः।।

गुरुदेव हरिः साक्षान्नान्यो इत्यब्रवीच्छ्रुतिः।।

अर्थात्–वेदशास्त्र पुराणादि से विहित कर्म, जो कर्म उपासना आदि का विषय है उस सबको छोड़कर परम श्रेय लाभ करने के लिये मनुष्य को गुरुभक्ति करनी चाहिये। गुरुदेव का स्वरूप क्या है और उनकी शक्ति क्या है? यह आगे की पंक्तियों में हम वर्णन करने का प्रयत्न कर रहे है। अधिकांश लोगों में इस बात का प्रचार है कि जहाँ पर गुरु भक्ति की चर्चायें चला करती है वहाँ से मनुष्य अपना नाक मुँह सिकोड़ कर पीछे हट जाया करते हैं और कहा करते है कि यह गुरुडम है, ढकोसला है, एक आदमी का प्रपंच है जो कुछ भोले–भोले व्यक्तियों को बहका करके अपने पीछे लगा लेता है और अपनी पूजा ईश्वर की तरह कराया करता है। ऐसा नहीं होना चाहिए, किन्तु यह बात यथार्थ नहीं है। यह उन लोगों की भावना है जो सद्‌गुरु तत्व को बिलकुल नहीं जानते और उससे बिल्कुल परे है। श्वेताश्वर उपनिषद का लेख है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिताह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।

अर्थात्–मनुष्य की जैसी अपने इष्टदेव में श्रद्धा हो वैसी ही गुरुदेव में भी होनी चाहिए तभी उसको गुप्त रहस्यों का बोध हुआ करता है। वैसे श्रद्धा के मार्ग में साधारण तो नियम यही है कि उपदेष्टा गुरु के प्रति मनुष्य को ईश्वरीय बुद्धि रखनी ही चाहिये और उसकी आज्ञाओं का पालन करना चाहिये। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार गुरुदेव का क्या स्वरूप है? उसको कुछ प्रमाण सहित हम समझाने का प्रयत्न कर रहे है। योग–दर्शन में भगवान पतंजलि देव ने गुरु का व्याख्यान करते हुए सूत्र की रचना की –

पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।

इस सूत्र पर भाष्य लिखते हुए भगवान व्यासदेव जी ने ये पंक्तियाँ लिखी है:–

पूर्वे हि गुरवः कालेनावच्छिद्यन्ते,

यत्रावच्छेदनार्थेन कालो नोपावर्त्तते,

स एष पूर्वेषामपि गुरुः। यथादस्य,

सर्गस्यादौ प्रकर्षगत्या सिद्धस्तथाऽति,

क्रान्ति सर्गादिष्वपिप्रत्येतव्यः।

इसका अर्थ यह है–कि वह नित्य शुद्धचित्त परमात्मा सृष्टि के शुरूआत से अब तक होने वाले गुरुओं का भी गुरु है वह अनादि सिद्ध है उसकी ही एक सत्ता इस प्रकार की है जो काल की सीमा से आगे है, इसी सूत्र के भाष्य में–

भास्वती टीका में – **पूर्वे गुरवो हिरण्यगर्भादयः कालेनाच्छिद्यन्ते।**

अर्थात्–जिनकी सत्ता काल की सीमा के अन्तर्गत है वह अविकृत सीमा है। सद्‌गुरु तत्व उससे भी आगे की वस्तु है। जिसकी कोई अवधि नहीं है, जिसका कोई अन्त नहीं है। **वह है** अनादि और अनन्त। शुद्ध चेतन है। वही सत्ता ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के अन्दर भी अपना

प्रकाश रखती है। परमात्मा की सृष्टि में अनेक ब्रह्माण्ड हैं और उन अनेक ब्रह्माण्डों के अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं।

तत्र–तत्र चतुर्वक्त्रा ब्रह्माणो हरयो भवाः
असंख्यातश्च रुद्राद्या, असंख्याता पितामहाः।
हरयश्चाप्य संख्याता, एक एव महेश्वरः।।

अर्थात्–अनन्त ब्रह्माण्डों के अन्दर असंख्य ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव हैं और वह सद्गुरु तत्व नित्य मुक्त परात्पर निर्गुण ब्रह्म ही है, उसमें से ही ब्रह्मा, विष्णु, शिव का प्राकट्य है। एक महेश्वर के अन्दर ही ईश आदि सब देवता दिखलाई देते हैं।

ईशाद्या सकला देवाः दृश्यन्ते परमात्मनि।

अर्थात्–ईश आदि सभी देवता उस परमात्मा में इस प्रकार प्रकट होते हैं जिस प्रकार जल के अन्दर जल की लहरें पैदा होती हैं या सोने से सोने के जेवरात पैदा हो जाते हैं, अतः निर्णयात्मक सिद्धान्त की बात यह है:–

यत्रावच्छेदनार्थं कालो नोपावर्तते स गुरुः।

अर्थात्–जिसका अन्त करने के लिये काल उपस्थित नहीं होता या दूसरे शब्दों में जो सत्ता काल के अधिकार से आगे है जिसका न कोई आदि है और न अन्त है, वही सत्ता सद्गुरु तत्व है जिसके विषय में हमारे शास्त्र कहते हैं:–

भयादस्य अग्निस्तपति, भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च, मृत्युः धावति पंचमः।
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकौ नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति।।

अर्थात्–वही एक सत्ता इस प्रकार की है जिसके भय से अग्नि तपती है, सूर्य तपता है, वायु और इन्द्र दौड़े–दौड़े फिरते हैं और काल हर समय आज्ञा में रहता है। वह स्वयं प्रकाशशील है वहाँ न सूर्य चमकता है न चन्द्रमा चमकता है न बिजली का प्रकाश है अग्नि का तो कहना ही क्या?

उसी के कारण यह सब विश्व प्रकाशित हो रहा है, वही सत्ता परात्पर नित्य एवं नित्य पूज्य है। जिस शरीर को वह तत्व अपना अधिष्ठान स्वीकार करता है, वह शरीर उसके तेज से प्रकाशित हो उठता है। नाम रूप से वन्दना उस शरीर की की जाती है जिसके अन्दर यह तत्व प्रकाशित होता है। कठोपनिषद का वचन है –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्त–स्यैष आत्मा विवृणुते तनुंस्वाम्।।

अर्थात्–यह आत्मा बहुत प्रवचन–बाजी से बुद्धिमानी से और केवल शास्त्र श्रवण से ही

प्राप्त नहीं होता, प्रत्युत जिसका वह स्वयं वरण करता है उसको मिलता है। और जिसे वह मिल जाता है उसके शरीर को वह अपना बना लेता है। इस मंत्र का सीधा सा अर्थ यही हुआ है – **जानत तुम्हहि तुम्हहि होइ जाई।** अर्थात्–उस परमात्मा को पाकर उसमें विलीन होकर मनुष्य उसका ही रूप बन जाता है।

इस सिद्धान्त के अनुसार ही नित्य चेतन–घन सच्चिदानन्द प्रभु जिसके शरीर को अपना अधिष्ठान बनाते हैं उसमें वे स्वयं ही होते हैं। अत: तात्विकी बात तो यही है कि जिसके शरीर में आदि अन्त रहित उस निर्गुण सत्ता का प्रकाश हो जाता है वही गुरू पद वाच्य है। वैसे योग सिद्धान्त के अनुसार जो योगी कृतकृत्य हो चुका है जिसकी परम लक्ष्य तक पहुँचाने वाली निर्वाण की वृत्ति ही शेष है, और वह भी वृत्ति हर समय अस्मि, अस्मि, अस्मि का ही जाप किया करती है। इसको निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। जो योगी ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा हो करके कूट स्थिति में पहुँच गया है और जिसकी केवल यह निर्वाणोन्मुखी वृत्ति शेष है जो अपने आपको सर्व भूतस्थ देखता है और सर्व भूतों को अपने अन्दर देखता है, उसकी दृष्टि में द्वैत खत्म हो गया है। भेदभाव की श्रृंखला टूट चुकी है।

जगदात्मा श्रीकृष्ण के कथानुसार:–

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः।।

इस प्रकार का व्यक्ति भी योग युक्त होने से गुरू पद वाच्य है। जिसके हृदय को अपना बना करके यह सत्ता प्रकाशित हो उठती है वही गुरु है। वही शक्तिपात कर सकता है और सिद्धियों का दाता है। इसलिये हमारे मन के अन्दर जो गुरु शब्द की अवहेलना रही है उसका कारण केवल एक ही होता है कि हम गुरू की सही परिभाषा नहीं जानते। पुराणों में गुरू की परिभाषा निम्नलिखित श्लोकों में वर्णित है:–

गु शब्द स्त्वन्धकारोऽस्ति, रु शब्दस्तन्निरोधकः।
अन्धकार निरोधित्वाद, गुरुरित्यभिधीयते।।

अर्थात्–'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'रु' शब्द का अर्थ है अन्धकार को नष्ट करने वाला। अन्धकार के वेग को रोक करके प्रकाश देने वाली शक्ति का नाम गुरू है। और वह स्वयं प्रणव स्वरूप है। इसलिये साधक के लिये पुराणों में हमारे पूर्वाचार्यों ने आदेश दिया:–

यावत्कल्पांतको देह–स्तावद्देवि गुरं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वछन्दो यदि भावयेत्।।

अर्थात्–कल्पभर रहने वाला शरीर भी प्राप्त हो जाये और कितनी ही ऊँची सामर्थ्य वाला हो जाय तो भी गुरूदेव का स्मरण करते रहना चाहिये। आजादी चाहने वाले व्यक्तियों को गुरू की उपेक्षा कभी न करनी चाहिये। तभी मनुष्य परम श्रेय का भागी हो सकता है।

●●●

रुद्राभिषेक महायज्ञ

– योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

सनातन हिन्दू धर्म में श्रावण या सावन माह को बहुत महत्व का माना जाता है। इस माह में शिव भक्त शिव मन्दिरों में भगवान् शिव पर जल चढ़ाया करते हैं। चारों ओर हर–हर महादेव की जयघोष सुनाई देती है। शिव भक्त सैकड़ों किलोमीटर दूर से गंगाजल लाकर भगवान शिव का अभिषेक करते हैं। स्थान–स्थान पर काँवड़ियाँ काँवड़ में जल लेकर नंगे पैर पैदल चलकर शिव के नाम का संकीर्तन करते हुए रात दिन चलते देखे जा सकते हैं। सोमवार के दिन तो यातायात की व्यवस्था भी चरमरा जाती है। भगवान शिव आशुतोष है अवढर दानी है। भक्तों को मनचाही वस्तु तुरंत प्रदान कर देते हैं। 'रुद्राष्टाध्याय' में भगवान् शिव की स्तुति की गई है। पाँचवा अध्याय रुद्रदेव का अध्याय है। इसमें भक्त भगवान शिव से प्रार्थना करता है, हे रुद्रदेव! अनीति का दमन करने वाले आपके क्रोध को हम नमस्कार करते हैं। दुष्टों को आघात पहुँचाने वाले आपके बाणों को नमस्कार करते हैं। दुष्ट विनाशक आपकी दोनों भुजाओं को नमस्कार करते हैं। हे रुद्रदेव! आप पर्वत में सुरक्षित गुफा कैलाश में रहते हो, आपके कल्याणकारी, शान्त व पाप विनाशक रूप जो सौम्य व बलवाली है उस सुखप्रद रूप से हम पर कृपा करते हुए दृष्टि पात करें। वेदपाठी ब्राह्मण लोग शुद्ध गंगाजल से, दुग्ध से, इक्षुरस से शिव लिंग का अभिषेक करते हैं तथा बिल्व पत्र चढ़ाकर मनोअभिलषित कामनाओं को प्राप्त किया करते हैं। शिव मन्दिरों में निम्न आवाज सुनी जा सकती है।

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः
शिवाय च शिवतराय च – यजु 16/41

अर्थात् कल्याणकारी व सुख देने वाले, मंगलमूर्ति परम आनन्द शिव स्वरूप को, पापनाशक रुद्रदेव को हमारा बार–बार नमस्कार है। इस प्रकार से शुक्ल यजुर्वेद में बहुत प्रकार से भगवान शिव की स्तुति की गई है और कहा है। भवसागर से तारने वाले को, भवसिन्धु से इस पार रखने वाले को, पाप से पार करने वाले तथा तत्वज्ञान द्वारा भवपार उतारने वाले को तथा अन्य सभी रुद्र के रूपों को नमस्कार करता हूँ।

भगवान् शिव अपने भक्तों को प्रसन्न होकर आयुध, अस्त्रशस्त्र भी प्रदान करते हैं। भगवान शिव ने रावण को चन्द्रहास नामक तलवार प्रदान किया और दूसरी तरफ भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् राम को दिव्य धनुष प्रदान किया। भक्त कहता है – प्रणमामि शिवम् शिव

कल्पतरुम्' अर्थात् कल्पवृक्ष के समान मनचाही वस्तु को प्रदान कर देने वाले शिव को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। भक्त जन भगवान से आरोग्यता, दीर्घायु एवं वंश वृद्धि व धनसम्पदा की याचना किया करते हैं।

अपने श्री सिद्ध गुफा सवाई आश्रम में भी सावन माह में ग्यारह दिन का रुद्राभिषेक का कार्यक्रम रहता है। गुरु पूर्णिमा के तीसरे दिन से ही यह अनुष्ठान प्रारम्भ हो जाता है। इस वर्ष 5 जुलाई से यह कार्यक्रम शुरू हुआ और 15 जुलाई को इसकी पूर्णाहुति हुई। इस रुद्र यज्ञ में ढाई-तीन सौ साधकों ने भाग लिया। साधक यज्ञशाला में बैठकर गुरु मन्त्र का जाप एवं ध्यानयोग का अभ्यास करते हैं तथा वेदमन्त्रों का श्रवण भी करते रहते हैं। हमारे गुरुदेव भगवान ने सन् 1970 में यह यज्ञ प्रारम्भ कराया था जिसका मुख्य ध्येय था कि साधकगण गृहकार्यों से अवकाश लेकर आश्रम में आकर सामूहिक साधना करें। विशेष ध्यानी अपने कक्ष में ही ध्यानाभ्यास करते हैं।

इस प्रकार से दो तीन घण्टे एकासन में बैठने का अभ्यास बनता है जो धीरे-धीरे आसन सिद्धि का कारण बनता है। गुरुदेव प्रातःकालीन आरती के समय सभी को चेतावनी दिया करते हुए कहा करते थे। 'सावन माह में राग-द्वेष को त्यागकर मौन रहकर गुरुमन्त्र का निरन्तर जाप किया करो' साधकगण गुरुदेव की आज्ञा मानकर वैसा ही करने का प्रयास करते थे। इस प्रकार से यह सावन माह का अनुष्ठान धार्मिक अनुष्ठान के साथ-साथ आध्यात्मिक अनुष्ठान का स्वरूप ले लेता था और साधक धीरे-धीरे समाधि की उच्चतर भूमिकाओं की ओर बढ़ने का प्रयास करता था जैसा कि गुरुदेव चाहते थे।

● ● ●

बीता हुआ क्षण फिर हाथ नहीं आता। यदि तुम मानव-जीवन की अमूल्यता को भूलकर इसे व्यर्थ और अनर्थ के कार्यों में लगाया रखोगे तो तुम्हारे समान मूर्ख और कोई नहीं होगा; क्योंकि तुम मिले हुए अपने परम लाभ के समय को व्यर्थ खो रहे हो और ऐसे कर्म कर रहे हो, जिनका परिणाम इस बहुमूल्य समय का नष्ट हो जाना - इस सुअवसर का छिन जाना ही नहीं होगा, वरं जन्म-जन्म तक आसुरी योनि और भीषण नरकयन्त्रणा की प्राप्ति होगी। फिर रोने-धोने से कुछ भी नहीं होगा। अतएव अभी से चेत जाओ और अपने जीवन का प्रत्येक क्षण भगवत्प्राप्ति के साधन में लगाकर जीवन को सफल करो।

वे तब भी रक्षा करते हैं, जब हम उन्हें भूले रहते हैं

– प्रकाशचंद शर्मा, गांव बडाही, जिला मंडी (हि.प्र.)

श्री प्रभुजी एवं सद्गुरुदेव जी का ऐसा कोई शिष्य/श्रद्धालु नहीं है, जिसे प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष तौर पर श्री प्रभुजी की कृपा प्राप्त न हुई हो। अपनी स्वार्थी वृत्तिवश हम लोग कृपालाभ को भूलकर अपनी कृतघ्नता का ही प्रमाण देते हैं। निजी तौर पर मुझे दर्जनों मर्तबा कृपालाभ प्राप्त हुए हैं, इनमें से चंदेक का उल्लेख निम्नलिखित है –

प्रथम घटना –

जनवरी 1997 की है। दिसम्बर 1996 की 22 तारीख को हि.प्र. पर्यटन निगम की एक बस जिला मंडी मुख्यालय से यात्रियों को लेकर दक्षिण भारत के तीर्थों की यात्रा के लिए रवाना हुई। तहसील जोगिन्दनगर के एक गुरुभाई ज्ञानचंद शर्मा जी के साथ मैं भी इस बस में यात्रा कर रहा था। यू.पी., बिहार, नेपाल, बंगाल, उड़ीसा राज्यों की सीमा लांघकर यह बस तिथि 16 जनवरी 1997 को, आंध्र प्रदेश की सीमा में प्रविष्ट हुई। यात्रियों के भोजन की व्यवस्था तीर्थ यात्रा के आयोजकों की ओर से थी। सड़क के किनारे जहाँ कहीं भी हैंड पंप या ट्यूब वैल मिलता, वहीं बस रोककर भोजन बना लेते थे। भोजन बनाने में सभी यात्री सहयोग करते थे। तारीख 16 जनवरी 1997 को सायंकाल लगभग सात बजे मुख्य हाईवे से लगभग 30 गज के फासले पर एक ट्यूब वैल देखकर बस रुकी एवं सायंकाल को भोजन वहीं बनाने का निश्चय हुआ। कुछ लोग सामग्री लाने के लिए निकटवर्ती दुकान में गए एवं मैं स्वयं पानी की बाल्टी उठाकर मुख्य हाईवे से मात्र तीस गज के फासले पर स्थित ट्यूब वैल से पानी लाने निकला। उस स्थान पर मुख्य हाईवे एवं कथित ट्यूब वैल के मध्य स्थल से होकर एक कच्ची एवं छोटी सड़क (लिंक रोड के तौर पर) स्थानीय किसी गाँव की ओर निकली थी। ज्योंही मैं पानी की बाल्टी भरकर लाने लगा (उस समय अंधेरा हो रहा था क्योंकि सर्दियों में दिन छोटे होते हैं) उसी समय मुख्य हाईवे पर विपरीत दिशा से एक बड़ा ट्रक हैड लाईट जलाकर तेज गति से दौड़ता हमारी ओर आ रहा था। मेरे हाथ में पानी से भरी बाल्टी थी एवं मैं कथित कच्ची सड़क के निकट पहुंच रहा था जहां से मात्र 20 गज दूर हमारा भोजन बन रहा था। मैंने अनुमान से सोचा कि उक्त ट्रक मुख्य हाईवे से होता हुआ निकल जाएगा अतः मैं लापरवाही से मंदगति से चलता हुआ आ रहा था। मेरे अनुमान के विपरीत उक्त ट्रक मुख्य हाईवे पर न जाकर उक्त कच्ची सड़क पर तीव्र गति से आ गया जिसके बीच में भरी बाल्टी लेकर पहुंच गया था एवं मैं ट्रक के नीचे आने से, किसी अज्ञातशक्ति की कृपा से बच गया। मेरे और ट्रक के बीच मात्र छः इंच का फासला रह गया था और ट्रक भारी आवाज करता हुआ रुक गया, किसी अज्ञात शक्ति ने जबरन ब्रेकलगवा दी थी। यह अज्ञात शक्ति वही है जिसे हम स्वार्थी जीव भूले रहे हैं एवं

जिसका संकेत उपरोक्त पैरा एक में दे चुका हूँ।

दूसरी घटना –

उक्त बस द्वारा यात्रा काल की ही एक अन्य विचित्र घटना है। हमारी बस दक्षिण भारत के प्रसिद्ध तीर्थस्थलों तिरुपति, रामेश्वरम्, कन्याकुमारी होती हुई पश्चिम तट के मैसूर, गोवा, बम्बई, नासिक, सोमनाथ आदि स्थलों की यात्रा पूरी करके महात्मा गांधी जी के जन्म स्थान पोरबंदर के रास्ते तिथि 9–2–1997 को द्वारकाधाम पहुंची। वहाँ के मुख्य मंदिरों के दर्शन उपरांत अगले दिन हमारी बस भेट द्वारिका के लिए रवाना हुई जो मुख्य द्वारिका से लगभग 35 किलोमीटर दूर अरब सागर के तट पर स्थित है एवं वहाँ उथले सागर को किश्ती द्वारा लांघकर जाना पड़ता है। उक्त दोनों द्वारिकाओं के बीच सड़क के किनारे दो छोटे तीर्थस्थल पड़ते हैं जिनके नाम हैं गोपी तालाब एवं नागेश्वर महादेव। उस समय नागेश्वर महादेव के तीर्थ स्थल पर प्रसिद्ध संगीतज्ञ गुलशन कुमार जी एक भव्य मंदिर का निर्माण करवा रहे थे। वहाँ कुछ देर के लिए हमारी बस रुकी एवं यात्रियों से उक्त मंदिर निर्माता के आदमियों ने मंदिर निर्माण हेतु चंदे (डोनेशन) की मांग की। कुछ यात्रियों ने चंदे की सहयोग राशि अदा की, मुझे कुछ बाद में इसका पता चला तो मैंने भी दौड़ लगाकर सबसे अंत में कुछ राशि जमा कराने हेतु मंदिर निर्माण स्थल पर जाकर राशि जमा कराई। लेकिन यात्री बस की ओर अपने वापसी कदम बढ़ाते ही बस स्टार्ट होकर चल पड़ी और मैं मात्र पंद्रह कदम बस से पीछे छूट गया था। मेरा सभी सामान बस में चला गया था। केवल मात्र कुछ पहने हुए कपड़े एवं थोड़े से रुपये मेरी जेब में थे, शेष यात्रा व्यय की राशि बैग में थी जो बस में चला गया था। इस अप्रत्याशित स्थिति में, मैं सन्न रह गया, मानो मेरे काटो तो खून नहीं, पैर के नीचे से मानो जमीन खिसक गई। इतने में ही बस उस अपरिचित सड़क पर मुझसे दो फर्लांग (250 से 300 मीटर) आगे निकल गई। क्षण भर के लिए श्री प्रभुजी का स्मरण हुआ एवं मानसिक याचना की। एक चमत्कार हुआ, दैवी प्रेरणावश मैंने बस के पीछे दौड़ लगाई, आश्चर्यपूर्वक मेरी दौड़ने की गति बढ़ती गई एवं बस की स्पीड घटती गई। मात्र 7–8 मिनट की दौड़ लगाकर लगभग डेढ़ किलोमीटर के फासले पर मैं बस की बराबरी में आ गया और साइड के शीशे से किसी यात्री ने मुझे दौड़ते हुए को देखकर बस को रुकवा लिया एवं बस में बिठा लिया।

तब कहीं मेरी जान में जान आई और मैंने श्री प्रभुजी का स्मरण कर मानसिक तौर पर धन्यवाद किया। बाद में अपने साथ बैठे यात्री ने बताया कि उसने सोचा कि मैं किसी दूसरी सीट पर बैठ गया होऊँगा। यह श्री प्रभुजी का चमत्कार था कि उन्होंने बस की स्पीड 40 किलोमीटर से घटाकर दस किलोमीटर कर दी एवं मेरी दौड़ने की स्पीड 8 किलोमीटर से बढ़ाकर 18 किलोमीटर कर दी जिससे मैं दौड़कर ही बस को पकड़ सका एवं भारी परेशानी से बच गया। इस घटना से यह भी शिक्षा मिलती है कि लम्बे सफर में अपने किसी सगे सम्बन्धी का साथ होना आवश्यक रहता है, अपरिचित यात्री एक दूसरे की विशेष परवाह नहीं करते, स्वयं ही

सावधान रहना पड़ता है।

तीसरी घटना –

तीसरी जीवन–रक्षक घटना गत वर्ष 2011 अगस्त मास की है। सुबह लगभग 8 बजे मैं अपने घर के आंगन के नीचे लगे पानी के नल से बर्तन में पानी भर रहा था। अकस्मात् उसी समय मेरे मकान की दूसरी मंजिल के स्लैब के एक कोने से ईंटों की रेलिंग का पिल्लर (9'' x 13'') जो अढ़ाई फीट ऊँचा था, साथ में लगी कंक्रीट सहित बीस फीट की ऊंचाई से धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। उस समय मैं नल से पानी भर रहा था और उक्त पिल्लर मेरे खड़े होने के स्थान से केवलमात्र एक फीट की दूरी पर गिरा। जब मैंने ध्यान से देखा तो पता चला कि यदि यह पिल्लर मेनस्लेब से इसके टूटने के स्थान से ठीक सीध में गिरता तो इसने मेरे सिर पर गिरना था क्योंकि मैं इसकी ठीक सीध में नीचे खड़ा था, परन्तु आश्चर्य पूर्ण बात यू रही कि यह पिल्लर थोड़ा तिरछा होकर गिरा एवं मुझसे मात्र एक फीट के फासले पर गिरा क्योंकि एक अज्ञात शक्ति (श्री प्रभुजी, गुरुदेव जी) ने तो हर स्थिति में मुझे बचाना था। बाद में जब मैंने ईंटों के उस पिल्लर को हाथ से धक्का देकर हटाया तो मालूम पड़ा कि उसका वजन एक क्विंटल से कम नहीं था। बीस फीट की ऊँचाई से इतना वजन मेरे सिर पर पड़ता तो मेरा कचूमर निकल जाता। परन्तु श्री प्रभुजी ने तो हर स्थिति में मुझे बचाना था। इस घटना से यह भी तथ्य सिद्ध होता है कि निर्जीव वस्तुओं पर भी श्री प्रभुजी का नियंत्रण है। इसी से मिलती जुलती एक घटना में मध्य प्रदेश राज्य में किसी आदिवासी क्षेत्र में श्री प्रभुजी ने हमारे एक गुरुभाई की उस समय रक्षा की थी जब वे किसी पुराने मकान से बाहर निकलते ही वर्षा ऋतु में पूरा मकान धड़ाम से गिर गया था। उक्त पिल्लर के टूटने का कारण यह था कि इसके नीचे स्लैब में लगे सरिये में वर्षा के पानी से जंग लग गया था एवं सरिया लगभग गल सड़ गया था। इससे स्लैब का कोना कमजोर पड़ गया था जो पिलर का वजन नहीं थाम रहा था। अतः पिलर स्लैब को छोड़कर गिर गया।

चौथी घटना –

चौथी घटना मेरे गाँव के एक युवक देवराज से सम्बंधित है इस घटना का विवरण उसने स्वयं मुझसे एवं हमारे ही गाँव के एक वरिष्ठ गुरुभाई कृष्णचंद शर्मा (अब स्वर्गीय) से किया है। घटना वर्ष 1970 की है। उस समय कृष्णचंद भाई स्टेट बैंक की सुंदरनगर स्थित शाखा में सेवारत थे। वे परोपकारी वृत्ति के थे एवं श्री महाराज जी (गुरुदेव जी) के दरबार में अधिकाधिक संख्या में लोगों को जोड़ने के लिए प्रयासरत रहते थे। उन्होंने उक्त देवराज के साथ तय किया कि अक्टूबर 1970 में श्री महाराज जी का योग प्रचार कार्यक्रम जो चंडीगढ़ के सैक्टर 14 स्थित श्री ओमप्रकाश शर्मा जी के मकान में निश्चित था, उसमें भाई कृष्णचंद जी उक्त युवक देवराज जी (जो उस समय बिलासपुर में रहते थे) को साथ लेकर जाने वाले थे। संयोगवश भाई कृष्णचंद जी जिस बस में सुंदरनगर (हि.प्र.) से चलकर बिलासपुर पहुँचे उस समय उक्त देवराज जी बिलासपुर के बस अड्डे पर नहीं पहुंच सके एवं जिस समय देवराज बिलासपुर बस

अड्डे पर देरी से पहुँचे उस समय भाई कृष्णचंद जी की बस बिलासपुर से चंडीगढ़ के लिए रवाना हो चुकी थी। देवराज की आयु उस समय मात्र बीस वर्ष के लगभग थी। वृत्ति अत्यंत सरल एवं निश्चय एकदम मजबूत। पहले कभी चंडीगढ़ गया नहीं, कहां जाना यह पता नहीं, जिसके साथ जाना तय था वह व्यक्ति (कृष्णचंद शर्मा) साथ मिला नहीं, ऐसी विकट स्थिति में भी उक्त देवराज अपनी सरल वृत्ति एवं दृढ़ निश्चय के साथ, पैदल ही सड़क के रास्ते चंडीगढ़ (बिलासपुर से 140 किलोमीटर दूर) के लिए चल पड़ा। जिन महाराज जी के योग प्रचार कार्यक्रम में शामिल होने के लिए देवराज पैदल ही चंडीगढ़ के लिए चल पड़ा उसे श्री महाराज जी अंतर्यामी बनकर देख रहे थे। 'सर्व भूताधिवासम' की उक्ति के अनुसार श्री महाराज जी ने अपनी अंतर्यामिता का परिचय दिया एवं देवराज के पीछे से आ रही कार के ड्राइवर को प्रेरणा देकर देवराज को कार में बिठा लिया जबकि कार मालिक एवं कार ड्राइवर से देवराज का कोई परिचय नहीं था। यह एक चमत्कार पूर्ण घटना हुई। आगे चलकर स्वारघाट नामक स्थान पर (बिलासपुर से 46 किमी. आगे) उक्त कार ड्राइवर ने उस बस को पकड़ लिया जिसमें बैठकर भाई कृष्णचंद चंडीगढ़ जा रहे थे। इस प्रकार दोनों गुरुभाई प्रसन्नतापूर्वक इकट्ठे होकर चंडीगढ़ के लिए रवाना हुए। 'जय श्री गुरुदेव जी की'।

●●●

"शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि तुम्हारे दिमाग में ऐसी बहुत सी बातें इस तरह ठूँस दी जायँ, जो आपस में लड़ने लगे और तुम्हारा दिमाग उन्हें जीवन भर भी हजम न कर सके। जिस शिक्षा से हम अपना जीवन-निर्माण कर सकें, मनुष्य बन सकें, चरित्रगठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सकें, वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है। यदि तुम पाँच ही भावों को हजम कर तदनुसार जीवन और चरित्र गठित कर सके हो तो तुम्हारी शिक्षा उस आदमी की अपेक्षा बहुत अधिक है, जिसने एक पूरी की पूरी लाइब्रेरी ही कण्ठस्थ कर ली है।"

– स्वामी विवेकानन्द

गीतामृत पदावली

लेखक – राम प्रकाश गुप्ता, हल्द्वानी
प्रेषक – डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

अहंकार से दूर सदा ही, आसक्त न विषयों में रहना।
जन्म, जरा, दुख, रोग, मृत्यु को सदा दोषमय ही कहना।। 8।।

सुत, दारा, धन, गृह–प्रपंच में होना अधिक न लिप्त कभी।
एक समान चित्त को रखना हो यदि इष्ट–अनिष्ट कभी।। 9।।

भक्ति अनन्य सदा मुझमें हो, अटल योग में ही विचरे।
विजन धाम में वास सदा हो, जन–समूह से दूर रहे।। 10।।

आत्म–ज्ञान को नित्य समझना, तत्व–ज्ञान का रखना ध्यान।
ज्ञान यही सब हैं कहलाते, इन्हें छोड़कर सब अज्ञान।। 11।।

मिलता अमृत, जिसे जानकर ज्ञेय वही मैं बतलाता।
सबसे परे अनादि ब्रह्म है, 'असत् न सत्' वह कहलाता।। 12।।

सभी ओर हैं उसके कर पद, सिर, मुख, आँखें हैं पर्याप्त।
तथा कान भी सभी ओर हैं, सारे जग में है वह व्याप्त।। 13।।

होकर के इन्द्रिय–विहीन भी, ज्ञात उसे उनका उपभोग।
अनासक्त वह जग–पालक है, निर्गुण है, करता गुण–भोग।। 14।।

प्राणि–मात्र के भीतर है वह तथा सभी के बाहर तात।
निकट सभी के और दूर भी, है अति सूक्ष्म, अतः अज्ञात। 15।।

नहीं विभाजित होकर भी वह है, विभक्त–सा सबमें, तात।
जन्म–मरण सबका वह करता, जग–पालक है वह विख्यात।। 16।।

ज्योतिगणों की ज्योति वही है, तम से परे कहा जाता।
सबमें स्थित, ज्ञान–गम्य है, ज्ञान–ज्ञेय वह कहलाता।। 17।।

क्षेत्र, ज्ञान औ' ज्ञेय तुझे संक्षेप रूप से बता दिया।
भक्त मुझे पा लेता अर्जुन! उसने यदि यह जान लिया।। 18।।

प्रकृति–पुरुष दोनों ही अर्जुन! आदि–रहित हैं, ऐसा जान।
सभी विकारों और गुणों को प्रकृति–जनित, कुंतीसुत! मान।। 19।।

कार्य–करण–कर्तृत्व–मात्र में हेतु 'प्रकृति' में बतलाता।
सुख–दु:खों की अनुभूति में कारण 'पुरुष' कहा जाता।। 20।।

पुरुष प्रकृति में रहकर करता प्रकृति–जनित गुण का उपभोग।
हेतु जन्म का किसी योनि में इन्हीं गुणों का है संयोग।। 21।।

अनुमोदक, भर्ता, औ भोक्ता दर्शक तथा महेश्वर है।
परम पुरुष कहलाने वाला इस तन में वह ईश्वर है।। 22।।

प्रकृति–पुरुष का तथा गुणों का जिसके मन में ऐसा भाव।
नहीं जन्म फिर वह पाता है, कैसा भी उसका बर्ताव।। 23।।

ध्यान लगाकर अपने में ही कोई ईश्वर को भजते।।
ज्ञान–योग के द्वारा अथवा, कर्म–योग में कुछ रमते।। 24।।

अज्ञानी जन औरों से ही सुनकर पूजन करते हैं।
सुनकर ही अर्चन वे करते भवसागर को तरते हैं।। 25।।

स्थावर–जंगम जितने का भी होता है जग में निर्मान।
क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ–जनित ही इन–सबको तू निश्चय जान।।26।।

मरणशील जीवों के भीतर प्राणि–मात्र में एकसमान।
जिसने देखा अविनाशी को, है उसको ही सच्चा ज्ञान।।27।।

ईश्वर सबमें व्याप्त सदा है, यही भाव जिसका रहता।
नहीं हनन वह करता अपना, अतः परम गति पा लेता।।28।।

प्रकृति सभी कर्मों को करती, जीव नहीं कुछ भी करता।
नित्य–तत्व पहचाना उसने यही भाव है जो रखता।।29।।

प्राणि–मात्र में स्थित ईश्वर, उससे ही सबका विस्तार।
ब्रह्म प्राप्त वह करता अर्जुन! ऐसा जिसका हुआ विचार।।30।।

आदि–रहित, निर्गुण है ईश्वर, पार्थ! अतः वह अव्यय भी।
तन में रहकर कर्म न करता, लिप्त न होता कहीं कभी।।31।।

सूक्ष्म अधिक होने के कारण नभ है लिप्त नहीं जैसे।
तन में रहने पर भी आत्मा, है अलिप्त अर्जुन वैसे।।32।।

एक सूर्य ज्यों देता संतत, सारे जग को पूर्ण प्रकाश।
त्यों क्षेत्री, क्षेत्रों में करता विमल ज्योति का, पार्थ! विकास।।33।।

अन्तर क्षेत्र और क्षेत्री का, प्रकृति बन्ध निस्तारक ज्ञान
ज्ञान–नेत्र से देख सकें जो, उनको मिल जाता भगवान्।।34।।

('श्रीगीतामृत–पद्यावली' का क्षेत्र–क्षेत्रज्ञ–विभाग–योग नामक
तेरहवाँ अध्याय पूर्ण)

(क्रमशः)

स्वास्थ्य

योग-आसन

वृक्षासन

विधि

वृक्षासन का लक्षण श्री महामुनि घेरण्ड जी ने इस प्रकार बताया है –

वामोरुमूलदेशे च याम्यं पादं निधाय च।

तिष्ठेत्तु वृक्षावद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः।।

अर्थात् अपने बायें पैर की जंघा पर दाहिने पैर को जमा कर एक ही पैर से वृक्ष के समान स्थिर भाव से खड़ा रहे। इसी का नाम वृक्षासन है।

वृक्षासन

विधि – सीधे समभाव से खड़े होकर अपने दाहिने पैर को मोड़ कर बायें पैर की जंघा पर जमा कर रख दें व वृक्ष की तरह स्थिर भाव से खड़े रहें। इसी को वृक्षासन कहते हैं।

समय – साधारण 1 मिनट से आरम्भ करके 2 या 3 मिनट पैर बदल–बदल कर, कर लेना चाहिए।

फल – शारीरिक दृढ़ता, स्थैर्य एवं सहिष्णुता के भाव पुष्ट होते हैं।

● ● ●

युवकों को आह्वान

''किसी कार्य को दु:साध्य मत मानो। तुम्हारा कर्त्तव्य है, बस जात–पांत न देखकर दीन–दुखियों की सेवा करते जाओ। तुम केवल अपना काम किये जाओ सब बाधायें मिट जायेंगी, सब कार्य सिद्ध होंगे। तुम सब मेधावी बालक हो और अपने को मेरा शिष्य कहते हो। बताओ तो, तुमने क्या–क्या काम किया है? एक जन्म दूसरों को दे डालना क्या तुमसे नहीं होगा? वेदांत पाठ और ध्यानाभ्यास इत्यादि अगले जन्म में कर लेना। यह शरीर दूसरों की सेवा में अर्पित कर दो– तब मैं समझूँगा कि तुम्हारा मेरे पास आना सार्थक हुआ।''

''तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो। काम करने का यही समय है। इसलिए अभी अपने भाग्य का निर्णय कर लो और काम में जुट जाओ, क्योंकि जो फूल बिल्कुल ताजा है, जो हाथों से मसला नहीं गया है और जिसे सूँघा नहीं गया है वही भगवान के चरणों में चढ़ाया जाता है; उसे ही भगवान ग्रहण करते हैं। इसलिए आओ एक महान ध्येय को अपनाएँ और उसके लिए अपना जीवन समर्पित कर दें। यही हमारा व्रत हो और वे परमेश्वर भगवान श्रीकृष्ण जो हमारे शास्त्रों की घोषणानुसार अपने प्रिय जनों के, परित्राणाय अर्थात् उद्धार करने के लिए बार–बार जन्म लेते हैं, हम पर आशीर्वाद की वर्षा करें एवं हमारे उद्देश्य की सिद्धि में सहायक हों। अत: रुको मत, उठो, जागो जब तक लक्ष्य प्राप्त न कर लो। उत्तिष्ठत् जागृत प्राप्य वरान्निबोधत्।''

– *स्वामी विवेकानन्द*

आश्रम समाचार

मण्डी हिमाचल प्रदेश का साप्ताहिक योग साधना शिविर

प्रेषक – हेमराज चोपड़ा, मण्डी

प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी मण्डी शहर में साप्ताहिक योग साधना शिविर का आयोजन रखा गया। कार्यक्रम बहुत ही शिक्षाप्रद और रोचक रहा। 1 जून को सायं 7 बजे योगाचार्य दासलाल जी महाराज का श्री सिद्धगुफा सवांई से शुभागमन हुआ। 2 जून से प्रातः 5 बजे श्री प्रभु जी की आरती के बाद एक घण्टा ध्यानाभ्यास का क्रम प्रतिदिन का था। इसमें सैंकड़ों गुरु भाई बहिन श्री प्रभु जी के दरबार में सामूहिक ध्यानाभ्यास में बैठते रहे। योगाश्रम का आदर्श स्वरूप दिखाई देता था। पश्चात् डेढ़ घण्टे जीवन तत्त्व साधन, योगासन व प्राणायाम का कार्यक्रम रहता था जो आठ बजे तक चलता था। आठ से नौ बजे तक स्वल्पाहार का समय रहता था। नौ बजे शिविर में भगवद्गीता का पाठ तथा उस पर व्याख्यान रहता था। शिविर में बाहर के सैंकड़ों साधक वाराणसी, हरियाणा, पंजाब तथा हिमाचल से आये थे। विशिष्ट गुरु भाइयों में श्री केशवदेव उपाध्याय जी, ब्रह्मचारी वीरेन्द्र स्वरूप जी, गुरु मुख दास थिरमाणी जी, मोहन स्वरूप गोवर्धन वाले तथा बाबा कानपुरी के नाम उल्लेखनीय हैं।

आचार्य दासलाल जी महाराज के व्याख्यान के साथ-साथ वीरेन्द्र स्वरूप जी (अम्बाला) के प्रवचन विशेष रूप से हृदयग्राही तथा शिक्षाप्रद रहे। सभी गुरु भाइयों को इन दो ब्रह्मचारियों के व्याख्यान के समय रह-रह कर गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज की याद आती रही। प्रबन्ध कमेटी की ओर से सभी के आवास तथा भोजन की सुन्दर व्यवस्था थी। स्मरण रहे यहाँ बाहर से भी साधक आकर योग ध्यान का अनुष्ठान करते रहते हैं। श्री गुरुदेव ने जिस उद्देश्य से इस योग सिद्धाश्रम के लिए आज्ञा दी थी वह फलीभूत होती दिखाई दी। दोपहर बाद तीन बजे से संकीर्तन, गुरु-संस्मरण तथा व्याख्यान शाम के आठ बजे तक चलते थे। जी. डी. थिरवाणी जी के संस्मरण भी बहुत शिक्षा प्रद व प्रेरणादायी रहे। 7 जून को भण्डारे के साथ ही कार्यक्रम सम्पन्न हुआ और बाहर से पधारे गुरुभाइयों, साधकों को आठ जून को भाव-भीनी विदाई दी गई। इस प्रकार से यह योग शिविर का साधनामय कार्यक्रम बहुत उत्साह वर्धक एवं अध्यात्म-पथ के साधकों के लिए बहुत लाभकारी रहा।

● ● ●

मानव जीवन के विकास के आध्यात्मिक सूत्र

– डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

मनुष्य जब से समझदार होता है उसकी इच्छा रहती है कि सुख मिले और दुख दूर हो। यहाँ उसकी सुख–दुःख की अवधारणा भौतिक–लौकिक होती है। यद्यपि यह सच है कि भौतिक सुख और आध्यात्मिक आनन्द में अपार अंतर है, फिर भी अत्यधिक क्लेशपूर्ण अवस्था में ध्यान अथवा प्रभू चिंतन नहीं हो पाता। महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज भी लगभग यही मत रखते हैं और कहते हैं कि सिद्ध सद्गुरु अपने शिष्य की साधना से उन्नति कराकर उसे संसार में भौतिक सुख और यश प्राप्ति के लिए परोपकार करने हेतु संसार में भेजता है। फिर कुछ समय बाद बुलाकर ऊर्ध्व गति हेतु वनों में भेज देते है।

चूँकि सबको सद्गुरु नहीं मिल पाते अतः लोग शास्त्रों में वर्णित मंत्र तथा स्तोत्र आदि का पाठ करके भौतिक कष्टों से मुक्ति पाने का प्रयास करता है और भावना की तीव्रता और आस्था के अनुरूप सफल भी होता है। अतः इस हेतु ''गुरु'' के अभाव में किये जाने वाले पाठ (ज्योतिषाचार्य परमानन्द धर दुबे द्वारा निर्देशित) सामान्य जनों के हेतु प्रेषित हैं। इनसे ''यद्दशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी'' फल प्राप्त होता है।

प्रभु की परम अनुकम्पा देखकर हृदय गदगद हो जाता है। परमानन्द में निमग्न ब्रह्मनिष्ठ जड़भरत से रहा न गया उन्होंने राजा रहूगण से कहा। हे राजन यह परमानन्ददायक मुक्ति मार्ग द्वारा भगवत् प्राप्ति तप से, यज्ञ से, सन्यासी होने से, गृह त्याग से या वेद ज्ञान से जल, अग्नि सूर्य की उपासना से भी प्राप्त होने वाली नहीं है। वह तो महान सत पुरुषों की चरण धूलि की कृपाभिषेक से ही प्राप्त हो सकती है। एक समय एक महापुरुष ने स्वर्गावलोकन किया। सभी जगह सुखमय दिखाई पड़ा। एक भवन ऐसा था जो सर्वाधिक सुख सामग्री से सुसज्जित था, परन्तु खाली था। देवदूत से पूछा सब भवन भरे हैं। यहां कोई नहीं, यह खाली क्यों। उत्तर मिला – यह भवन संत महापुरुषों के लिए बना है। परन्तु संत महापुरुष संसार के दुख को देखकर परम दुखी होकर यहां का सुखभोग की ओर दृष्टिपात भी नहीं करते है। पुनः कल्याण भावना से जन्म ग्रहण करके संसार को सुखी करने की चेष्ट करते हैं तथा ज्ञान, योग, तप, कर्म की शिक्षा देकर संसार को सुखी बना देते हैं। कौन सा व्रत किस तरह की उपासना या किस स्त्रोत्र पाठ से क्या लाभ प्राप्त होता है यह उन महापुरुषों से मिला है।

1. 'नारायणकवच' का पाठ करने से अन्य द्वारा किये गये कोई तांत्रिक प्रयोग का कोई असर नहीं होता और सुख समृद्धि मिलती है उपद्रव शान्त होता है।
2. नवग्रहों के स्त्रोत्र। जिस ग्रह की पीड़ा है उस ग्रह के मंत्र जप एवं स्त्रोत्र पाठ स्वयं करने या ब्राह्मण द्वारा कराने से ग्रह पीड़ा दूर होती है।
3. आदित्य हृदय स्त्रोत्र अनुष्ठान से विजय प्राप्ति होती है।

4. महामृत्युंजय स्त्रोत्र पाठ से मरणासन्न व्यक्ति भी शीघ्र आरोग्य लाभकर दीर्घ आयु प्राप्त करते हैं। इसी स्त्रोत्र की उपासना से मारकण्डेय जी अजर अमर हो गये।

5. सिद्ध कुंजिका स्त्रोत्र का पाठ करने से दुर्गा पाठ का पूर्ण फल प्राप्त होता है। कुल देवी प्रसन्न होकर धन धान्य समृद्धि देती है।

6. सौभाग्य स्त्रोत्र – जो कन्या या सौभाग्यवती स्त्री इसका पाठ करती है वह पुत्र, पौत्रवती, सौभाग्यवती और सुखी जीवन्मुक्त होती है।

7. अपराजिता स्त्रोत्र – का पाठ करने से सभी प्रकार के उपद्रव शाँत होते हैं।

8. श्री संकटनाशन गणेश स्त्रोत्र – के पाठ करने से सब विघ्न की समाप्ति और धन–धान्य की प्राप्ति होती है। शिव–स्त्रोतों के पाठ से शिवजी की आराधना करने से सांसारिक सुख शाँति की प्राप्ति एवं विद्या वृद्धि और अन्त में मुक्ति प्राप्त होती है।

9. शाप विमोचन – के पाठ करने के पश्चात् विष्णु–सहस्त्रनामस्त्रोत का पाठ करने से सब व्याधि दूर होती है। सुख समृद्धि प्राप्त होती है अन्त में हरि पद प्राप्त होता है।

10. गजेन्द्रमोक्षस्त्रोतम – पूजा करके गजेन्द्र मोक्ष का पाठ करने से दुःस्वप्न का फल नष्ट होता है, सांसारिक सुखों की वृद्धि होती है और अन्त में भगवत् प्राप्ति होती है।

11. चतुः श्लोकि भागवत का नित्य प्रेम पूर्वक पाठ करने से लक्ष्मी एवं नारायण की कृपा बनी रही है।

12. रामरक्षास्त्रोत्र – के अनुष्ठान से मरणासन्न व्यक्ति भी आरोग्य प्राप्त करते हुए देखे गये हैं। अतः इसका पाठ आरोग्य प्रद है और भगवत प्राप्ति करता है।

13. श्री हनुमान चालीसा – संकटमोचन हनुमानाष्टक के पाठ करने से संकट का नाश होता है और आत्मबल की वृद्धि होती है।

14. श्रीसूक्त, कनकधारास्त्रोत्र – के पाठ से लक्ष्मी प्राप्त होती है।

15. शीतलाष्टकम् – के पाठ से घर में ज्वर, शीतला प्रकोप स्फोट पीड़ा शांत होती है।

16. देव्यपराधस्त्रोत्र – के पाठ से मन की शाँति – अन्नपूर्णाष्टकस्त्रोत्र – के पाठ से धन–धान्य की वृद्धि होती है।

17. संकटाष्टकम्– इसका पाठ प्रतिदिन करने से समस्त संकट दूर होते हैं। घोर संकट हो तो संकटा देवी की 108 परिक्रमा से शीघ्र दूर होता है।

18. श्रीकार्तिकेय मंत्र जपादि विधि पूर्वक स्त्रोत्र पाठ – की अनुष्ठान करने से नष्ट द्रव्य तथा चोरों द्वारा अपहृत सम्पत्ति, ब्याज दिया हुआ डूबा हुआ धन पुनः प्राप्त होता है।

19. चाक्षुषोपनिषद – के पाठ करने से नेत्र के सभी रोग की शांति होती है।

20. संतान गोपाल मंत्र प्रयोग – से लोगों को संतान की प्राप्ति एवं सुख शाँति मिलती है। यह ज्ञान एवं कर्मकाण्ड से मानव जीवन का सर्वांगीण विकास होगा।

● ● ●

कैसे-कैसे करते वो कमाल

– विजय कुमार शर्मा, सहारनपुर

तर्ज – हाय शरभाऊँ

करें कल्याण महाप्रभु रामलाल,
कैसे–कैसे करते वो कमाल
महाप्रभु रामलाल जी – महाप्रभु चन्द्रमोहन जी

देववाणी सिद्ध करने, ताप दुनिया के हरने
भू पर प्रभु ने लिया अवतार
योग की ज्योत जगाने को ... जगाने...
भूले से यदि, नाम पुकारा, दिया उसको सहारा
करें कल्याण ...
सृष्टि को रचाते हैं, भार उसका उठाते हैं
करते सबका कल्याण, सच की राह दिखाते हैं .. दिखाते...
अब तो आजा, प्रभु जी के द्वारे, भटके काहे संसार में
करें कल्याण ...
सच्चा ये दरबार, हो जाते हैं सभी निहाल
शीश चरणों में झुका ले, अपनी बिगड़ी तू बना ले ... बना ले
तुझे बुला रहे मेरे सद्गुरु प्यारे, आजा प्रभु के द्वारे
करें कल्याण ...
ध्यान समाधि को देकर, सबको योगी बनाते हैं
कराके जीवन तत्व साधन, काया निरोगी बनाते हैं
योग मार्ग का पथिक बनाके करते हम पे मेहरबानियाँ
करें कल्याण ....

• • •

सच्चे योगी बनें

– डॉ. हीरा लाल लोहिया, 14 सरकार लेन, कोलकाता–7

आधुनिक युग में योग का उद्देश्य विस्तृत है। केवल योग का ही अभ्यास शारीरिक एवं मानसिक अव्यवस्था को दूर कर सकता है। योग द्वारा ही हमारे मन में एवं घर में आनंद का संचार हो सकता है। योग असाधारण आंतरिक अनुशासन का निर्माण नहीं करता।

यौगिक जीवन अपनाने के लिए सांसारिक महत्वाकांक्षाओं या भौतिक सुखों का त्याग आवश्यक नहीं है। जीवन के सुखों का उपभोग करते हुए गृहस्थ में रहकर भी आप योगी बन सकते हैं और अपने जीवन को आवागमन से छुटकारा दिला कर मोक्ष लाभ कर सकते हैं।

परन्तु व्यक्ति विशेष को इच्छाओं का गुलाम नहीं बनना चाहिए। पंच विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को अपने अधीन कैद रखना चाहिए। यह नहीं हम स्वयं ही इनके अधीन हो जाएं। हमारे पूज्यवर गुरुदेव महाराज की यही वाणी थी कि गृहस्थ जीवन जो एक श्रेष्ठ जीवन है, में रहते हुए सभी सुखों का भोग आनंद करते हुए मोक्ष गति को प्राप्त करें। जंगलों, पहाड़ों पर जाकर सन्यासी बनकर इस गरीब आत्मानंद को सताकर अगर कुछ प्राप्त किया गया तो क्या किया। इच्छाओं को कुचलना यह सद्–गति प्राप्ति नहीं हुई। फिर उन इच्छाओं के लिए अवश्य जन्म लेना पड़ता है।

यह इलेक्ट्रानिक का जमाना है, जहाँ सारे कार्य कम्प्यूटरों द्वारा सुलभ एक क्षण में हो जाते हैं। पुरानी परम्परा को बदलना है और आधुनिक विकास हेतु प्रगति करनी है।

योग का सच्चाई से लाभ अभ्यास करने वाले व्यक्ति सांसारिक भोगों में रहते हुए भी समुद्र की तरह शाँत बने रहते हैं। जैसे सभी नदियों की तीव्र धाराओं को अपने में समाविष्ट करने पर भी समुद्र शान्त ही बना रहता है।

आजकल की इस परिस्थिति में अपने घर गृहस्थी को तिलांजलि देकर अथवा बोझ से भयभीत होकर समाधि के लिए एकान्त उच्चासन में आनन्दपूर्वक बैठने का कोई मूल्य नहीं है। जीवन की कठिनाइयों को झेलते हुए एवं विपरीत परिस्थितियों में हर प्रकार की विपत्ति में संयम की समाधि प्राप्त करना ही शूरता है। श्री गुरुदेव के सद्मार्ग पर चलते हुए अपने को कमल पुष्प के समान संसार में रहकर सभी कार्य करते रहना ही एक श्रेष्ठ योगी का मार्ग दर्शन बनता है। अधिक दूर क्यों जाय? जीवन स्वयं एक योग है। दिन प्रति दिन के हमारे क्रिया कलाप ही योग हैं। योग का क्षेत्र विशाल है। ध्यान–योग, मंत्र–जप द्वारा हमारे दैनिक जीवन की सभी क्रियाओं में परिवर्तन कर अधिक लाभ हो सकता है बशर्ते हम नियम संयम से प्रति दिन सद्–गुरुदेव के बताये मार्ग पर चलते रहें।

योग का संबंध चमत्कार या सिद्धि से नहीं है। योग एक मुक्ति विज्ञान है जिसका उद्देश्य संकुचित व्यक्तित्व का विकास करना है। इसकी प्राप्ति हेतु अपने श्री गुरु द्वारा अच्छे मार्ग भक्ति, कर्म, ज्ञान, योग एवं राज योग शक्तिपात द्वारा ही ग्रहण कर लाभ उठाया जाता है। मनुष्य को मात्र बुद्धिवादी या भावुक नहीं होना चाहिए। योग का अर्थ है एकता, जोड़ना, संग्रह करना। अपने क्षेत्र का विकास कीजिए और अपने जीवन के दुखों से ऊपर उठिये। प्रत्येक के सुख–दुख में योग दीजिए जिस प्रकार एक माता एवं बालक में भावनात्मक एकता होती है, वैसी ही एकता का निर्माण अपने चारों ओर कीजिए। अतः आप अपने पथ को स्वयं समझोगे अपने में क्या कमी रह गई जो बाधा बन रही है।

ध्यान योग करने से मनुष्य की पूर्ण एकाग्रता प्राप्त होती है। एकाग्रता से आप सच्चे योगी बन सकते हैं। पूर्ण चेतन के साथ अपने मन को एकाग्रता से अपने उद्देश्य प्राप्ति की ओर लगा देना चाहिए – यों जब तक स्थिरता न आवे तब तक बराबर अपने समावेश में लगे रहें। योगी अपनी नींद को समाधि में परिवर्तित कर देता है फिर भी उसे थकान मालूम नहीं होती। सारे कार्यों को करते रहने पर भी कुछ क्षण कुछ समय निकालकर ध्यान–योग के माध्यम से एकान्त में बैठने पर ही सब कुछ लाभ हो सकता है। अन्यथा कुछ भी नहीं सिर्फ भटकने से अनेक गुरु के दरवाजों पर जाने पर भी कुछ नहीं प्राप्त हो सकता।

आंतरिक इच्छा एवं शुद्ध उद्देश्य से किया गया कार्य अवश्य सफलता देता है आगे मार्ग स्वतः दर्शन कराता है।

यदि जीवन में एकाग्रता से आसन ग्रहण कर ध्यान, मंत्र, जप इत्यादि विधिवत न किया गया तो मन भोगों से अतृप्त ही रहता है और आखिर समय शरीर सामर्थ्यहीन होकर छूट जाता है, फिर मन के भोगों के प्रति आसक्ति अपने पुनर्जन्म का कारण बन जाती है। जीव आवागमन के क्रम से मुक्त नहीं हो पाता।

इसलिए मुमुक्षु के लिए मन को संकल्प शून्य अवस्था में करने का अभ्यास अवश्य करना चाहिए। मानव शरीर प्रकृति की श्रेष्ठतम कृति है। जिसमें मन रूपी एक अद्भुत कम्प्यूटर लगा है जिसकी क्षमता कल्पना से परे है। मन की गति असीम है और इसकी क्षमता संदेह से परे है किन्तु यह तभी संभव है, जब इसे संकल्प शून्य करके पूर्ण विश्राम दिया जाय तथा निरंतर खर्च हो रही अपनी पवित्र ऊर्जा व स्वांस का संचय किया जाय। इसमें बराबर लगे रहने से तथा अभ्यास करते रहने से ही सब हो सकता है।

हमारे इस शरीर में सभी चक्रों के अलावा एक भय चक्र भी है, जिसका भेदन करना बहुत दुरूह है। इस भय चक्र का भेदन तभी संभव है जबकि मनुष्य के पास किसी से छिपाने योग्य कुछ भी न रहे और उसका जीवन एक खुली पुस्तक की तरह हो जाए, राग द्वेष से परे व कथनी करनी में समानता द्वारा ही इसका भेदन संभव है। यह योगी की प्रथम सीढ़ी है जो यहाँ से

आरम्भ होती है।

हिंसात्मक गति विधियों का त्याग, वैराग, मन की पकड़ और दयावान दीन नम्रता धारण करना ही योगी की पहचान है। फूलों की सुगन्ध की भांति वह स्वयं ही अपने स्वरूप को प्रचलित करती है। एक सच्चे योगी से बड़ा श्रेष्ठ इस संसार में कौन हो सकता है। जन्म जन्मान्तरों के प्रयास करने पर यह मनुष्य शरीर मिलता है एवं उसमें मानव धर्म के पथ पर चलकर योगी होना तो बहुत ही उत्तम श्रेष्ठ कर्म है। बराबर प्रयास करते रहना ही जीवन संग्राम है।

● ● ●

''पाश्चात्यों की सफलता या प्रगति (भौतिक) का रहस्य शिक्षा ही है। भारत और अमेरिका का उच्च वर्ग तो एक ही समान है किन्तु हमारे यहाँ का निम्न वर्ग पिछड़ा एवं अशिक्षित है। अतः हमें इसको शिक्षा के माध्यम से आगे लाने का प्रयास करना है। हमें शिक्षा के माध्यम से व्यक्ति में विकास लाकर उनमें महानात्माओं को समावेशित करना है। अशिक्षा हमारे राष्ट्र की भारी कमी है और इसे दूर करना होगा। जनसाधारण को शिक्षित करो और ऊपर उठाओ। केवल तभी यह देश यथार्थ में राष्ट्र-रूप में खड़ा हो सकेगा। तुमने पढ़ा होगा मातृ देवो भव, पितृ देवो भव। अर्थात् माता को देवता समझो, पिता को देवता समझो। किन्तु मैं कहता हूँ कि दरिद्र देवो भव, मूर्ख देवो भव - इन गरीबों, अपढ़ों, अज्ञानियों और दुखियों को ही अपना भगवान मानो। स्मरण रखो केवल इनकी सेवा ही तुम्हारा परम धर्म है। यानि शिक्षा का मूल उद्देश्य मनुष्य में सेवा भाव पैदा करना है।''

- स्वामी विवेकानन्द

शरीर का कारण मन है -
मन का कारण प्राण-स्पन्द और वासना
इनका कारण विषय, विषय का कारण जीवात्मा और
जीवात्मा का कारण परमात्मा

(योग वासिष्ठ से साभार)

श्री वासिष्ठ जी कहते हैं – रघुनन्दन! भाव और अभाव का तथा दुःख रूपी रत्नों का खजाना चित्त ही है जो वासनाओं के वश में रहने वाला एक तरह से अनुचर है, शरीर का कारण है। प्रतीत होने के कारण सत् और विनाशशील होने के कारण असत् रूप ये शरीर समूह एक मात्र चित्त से ही उत्पन्न हुए हैं, जैसे स्वप्न में भ्रम से संसार की प्रतीति सबको स्वयं होती है। जो यह मिथ्या जगत् का स्वरूप दृश्यता को प्राप्त है, वह चित्त से उसी प्रकार उत्पन्न होता है, जिस प्रकार मिट्टी से घड़े आदि उत्पन्न होते हैं। अनेक तरह की वृत्तियाँ धारण करने वाले इस चित्त रूपी वृक्ष के दो बीज हैं – एक प्राण संचरण और दूसरा दृढ़ भावना। जब शरीर की नाड़ियों में प्राण वायु संचरण करने लगता है, तब वृत्तिमय चित्त तत्काल ही उत्पन्न होता है। किन्तु जब शरीर की नाड़ियों में प्राण संचरण नहीं करता, तब वृत्ति ज्ञान न होने के कारण उसमें चित्त उत्पन्न नहीं होता। यह प्राण संचरण रूप जगत ही चित्त के द्वारा दिखाई पड़ता है, जिस प्रकार आकाश में नीलता आदि दिखायी पड़ते हैं। राघव! जीवात्मा के विषयों के सम्पर्क से रहित होने पर ही उसका परम कल्याण होता है। किंतु प्रकट हुआ जीव ही तत्काल बाह्य विषयों की ओर रागवश चला जाता है और उन विषयों के भोग के अनुभव से चित्त में अनन्त दुःख उत्पन्न होते हैं। जब जीवात्मा बाह्य विषयों से उदासीन होकर परमात्मा के ज्ञान के लिए प्रयत्न शील होता है। तब वह प्राप्त करने योग्य निर्मल परमपद रूप परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। श्रीराम! जीवात्मा के संकल्प को तुम चित्त जानो। उसी चित्त ने इस अनर्थ जाल का विस्तार किया है।

योगी लोग चित्त की शान्ति के लिए योगशास्त्र में बतलाये गये प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यानरूप योग की युक्तियों के द्वारा प्राण का निरोध करते हैं। विद्वान् लोग प्राण–निरोध को ही चित्त शान्ति रूप फल का दाता, उत्तम समता हेतु और जीवात्मा की अपने वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्दघन परमात्मा में सुन्दर स्थिति कहते हैं। महाबाहु श्री राम! तीव्र संवेग से आत्मा के द्वारा जिस पदार्थ की भावना की जाती है, तत्काल ही वह जीवात्मा अन्य स्मृतियों को छोड़कर तद्रुप ही हो जाता है। वासना के अत्यन्त वशीभूत और तद्रुप हुआ वह जीवात्मा जिस किसी को देख लेता है, उस सबको अज्ञान से सदवस्तु मान लेता है और वासना के वेग वश अपने स्वरूप को भूल जाता है। फिर वही वास्तविक आत्मज्ञान से रहित जीवआत्मा भीतरी वासनाओं के अभिभूत होकर विष से अभिभूत पुरुष की तरह अनेक मानसिक आपत्तियों

से व्याकुल रहता है। दृढ़ अभ्यास से कारण देह आदि पदार्थो में 'अहम', 'मम' आदि वासना से ही जन्म, जरा और मरण का कारण अति चंचल चित्त उत्पन्न होता है। जब निरन्तर वासना का अभाव होने से मन से रहित हो जाता है, तब मन का अभाव हो जाता है, जो परम उपरति स्वरूप है। जिस महामति पुरुष को संस्कार से उत्पन्न विषय – रसास्वाद के स्मरण से विषयों में आसक्ति उत्पन्न नहीं होती उस पुरुष का चित्त अचित्तरूपता को तथा विशुद्ध सत्व को प्राप्त कहा जाता है। जिस महापुरुष में पुनर्जन्म की कारणभूता अहंता, ममतारूप वासना का अभाव हो गया है वह चक्र के भ्रमण सदृश जगत् के व्यवहार में लगा हुआ भी जीवन्मुक्त और परमात्मा में स्थित है। तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार कुम्भकार के व्यापार के अभाव में चक्र का भ्रमण तब तक होता रहता है, जब तक उसमें वेग रहता है, उसी प्रकार अविद्या के नाश होने पर भी प्रारब्ध संस्कार के अवशिष्ट रहने से अहंकार के बिना ही जीवन्मुक्त का शरीर और उसका व्यवहार दोनों प्रारब्ध–भोग पर्यन्त विद्यमान रहते हैं। जिनका चित्त विशुद्ध स्वरूपता प्राप्त कर चुका है ऐसे ज्ञान के पारंगत महात्मा चित्त से रहित कहे जाते हैं। प्रारब्ध के क्षय हो जाने पर वे सच्चिदानन्द परमात्मा में विलीन हो जाते हैं।

वासना का ऊर्ध्वगति स्वभाव होने से वह जीवात्मा के क्षोभकारक कर्म से प्राण–स्पन्दन का उद्बोधन करती है और उससे चित्त उत्पन्न होता है एवं स्पन्दन धर्मवाला होने से हृदयगत राग आदि गुणों का स्पर्श करके प्राण जीवात्मा का उद्बोधन करता है और क्रम से चित्त रूपी बालक उत्पन्न होता है। श्री राम! वासना और प्राण स्पन्दन दोनों चित्त के कारण हैं। उनमें से किसी एक का लय हो जाने पर दोनों का और उनके कार्य का विनाश हो जाता है, जैसे विदेह मुक्त ज्ञानी का वासना सहित चित्त और प्राण ब्रह्म में विलीन हो जाता है। रघुनन्दन! जीवात्मा ही अपनी धरती का परित्याग करके अपने संकल्प से विषय रूप सा बनकर चित्त का बीज रूप हो जाता है। जिस प्रकार तिल तेल से रहित नहीं है उसी प्रकार जीवात्मा सब विषयों में व्यापक है। अपने संकल्प से चेतन जीवात्मा ही प्रस्फुरित होता हुआ स्वयं पदार्थ को देखता है। जिस तरह स्वप्न में अपना मरण और भिन्न देश में स्थिति दोनों अपने संकल्प से ही होते हैं। उसी प्रकार जाग्रत कालीन पदार्थ भी जीवात्मा के संकल्प से ही होते हैं।

वासना रहित होने के कारण अपने आत्मा में जब किसी पदार्थ की भावना नहीं रहती और वह परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है, तब जड़ता से रहित विशाल एवं विशुद्ध यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए ज्ञानवान फिर कभी संसार में लिप्त नहीं होता। समस्त वासनाओं का अत्यन्त अभाव होने पर निर्विकल्प समाधि में परमआनन्दरूप परमात्मा की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए संसार चिन्तन से रहित योगी लोग चलते बैठते, स्पर्श करते और सूँघते हुए भी चिन्मय अक्षय आनन्द से पूर्ण सुखी कहा जाता है।

रघुनन्दन! जब तक मन विलीन नहीं होता, तब तक वासना का सर्वथा विनाश नहीं होता और जब तक वासना विनष्ट नहीं होती, तब तक चित्त शान्त नहीं होता। जब तक चित्त की

शान्ति नहीं होती तब तक परमात्मा के तत्व का यथार्थ ज्ञान नहीं होता। जब तक वासना का सर्वथा नाश नहीं होता तब तक तत्व ज्ञान कहाँ से होगा। इसलिए परमात्मा का यथार्थ ज्ञान, मनोनाश और वासना क्षय ये तीनों ही एक दूसरे के कारण हैं। अतः ये दुस्साध्य है, किन्तु असाध्य नहीं। विशेष प्रयत्न करने से ये तीनो कार्य सिद्ध हो सकते हैं। श्रीराम! विवेक से युक्त पौरुष प्रयत्न से भोगेच्छा का दूर से ही परित्याग करके इन तीनों साधनों का अवलम्बन करना चाहिए। यदि इन तीनों उपायों का एक साथ प्रयत्न पूर्वक भली प्रकार बार-बार अभ्यास न किया जाय तो सैंकड़ों वर्षों तक भी परम पद की प्राप्ति सम्भव नहीं है। किन्तु वासना क्षय, परमात्मा का यथार्थ ज्ञान और मनोनाश इन तीनों का एक साथ दीर्घ काल तक प्रयत्न पूर्वक अभ्यास किया जाय तो ये परमपद रूप फल देते हैं।

श्रीराम! यह संसार की दृढ़ स्थिति सैंकड़ों जन्म-जन्मान्तरों से मनुष्यों के द्वारा अभ्यस्त है, अतः चिरकाल तक अभ्यास किये बिना वह किसी तरह भी नष्ट नहीं हो सकती। इसलिए चलते-फिरते, श्रवण करते, स्पर्श करते, सूंघते, खड़े होते, सोते, जागते सभी अवस्थाओं में परम कल्याण के लिए इन तीनों उपायों के अभ्यास में लग जाना चाहिए। तत्वज्ञों का मत है कि वासनाओं के परित्याग के समान ही प्राणायाम भी एक उपाय है। इसलिए वासना परित्याग के साथ-साथ प्राण निरोध का भी अभ्यास करना आवश्यक है। वासनाओं का भलीभांति परित्याग करने से चित्त भूने हुए बीज के समान अचित रूप हो जाता है और प्राणस्पन्द के निरोध से भी चित्त अचित रूप हो जाता है। इसलिए तुम जैसा उचित समझो वैसा करो। चिरकाल तक प्राणायाम के अभ्यास से योगाभ्यास में कुशल गुरु द्वारा बताई हुई युक्ति से, स्वस्तिक आदि आसनों की सिद्धि से और उचित भोजन से प्राण-स्पन्द का निरोध हो जाता है। परमात्मा के स्वरूप का साक्षात अनुभव होने पर वासना उत्पन्न नहीं होती। आदि, मध्य और अन्त में कभी पृथक न होने वाले एक मात्र सत्यस्वरूप परमात्मा को भलीभांति यथार्थ रूप से जान लेना ही ज्ञान है। यह ज्ञान वासना का सर्वथा विनाश कर देता है तथा अनासक्त होकर व्यवहार करने से संसार का चिन्तन छोड़ने से वासना उत्पन्न नहीं होती। बुद्धिमान पुरुष को एकाग्र चित्त से बारम्बार एकान्त में बैठ कर प्राणस्पन्द के निरोध के लिए विशेष यत्न करना चाहिए। जिस प्रकार मदमत्त हाथी अंकुश के बिना दूसरे उपाय से वश में नहीं होता, उसी प्रकार पवित्र युक्ति के बिना मन वश में नहीं होता। आध्यात्म विद्या की प्राप्ति, साधु-संगति वासना का सर्वथा परित्याग और प्राण-स्पन्दन का निरोध ये ही युक्तियाँ चित्त पर विजय पाने के लिए निश्चत रूप से दृढ़ उपाय हैं। इनसे तत्काल ही चित्त पर विजय प्राप्त हो जाती है और पुरुष को परम पद की प्राप्ति हो जाती है।

● ● ●

हमारी आध्यात्मिकता

– डॉ. शंकर दत्त ओझा, आई. ए. एस.

किसी भी राष्ट्र अथवा जाति को कालजयी व उत्कृष्ट बनाने के लिए केवल उसकी आध्यात्मिकता ही मानदण्ड हुआ करती है। जिस देश या जाति का आध्यात्मिक स्तर व चिन्तन–मनन जितना उन्नत होगा उतना ही उन्नत उस देश की संस्कृति होगी। पाश्चात्य देशों की सभ्यता भौतिकतावादी रही है। वहाँ आध्यात्मिक चिन्तन का कोई महत्व नहीं है। 'खाओ पियो और मौज मनाओ' वहाँ के जीवन का मन्त्र है, यद्यपि हमारे देश में तत्वज्ञान की पहचान कर उसके मूल में पहुँचने वाले चिन्तकों की एक अति प्राचीन परम्परा ही रही है। सनातन मूल्यों की खोज व उनकी प्राप्ति भारतीय जीवन दर्शन का गन्तव्य रहा है। हमें जब भी विश्वसभ्यताओं की पंक्ति में गिना गया है तो सिरमौर के रूप में और विश्व के अग्रणी के रूप में।

भारत ने आध्यात्म के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति की है। विश्व को हमने इसकी शिक्षा दी है। हमारी मान्यता है कि मानव जीवन केवल भोग के लिए ही नहीं है, बल्कि आत्मा को ऊंचे शिखर तक उठाने के लिए है। जीवन इस आत्मिक उन्नयन के लिए मुख्य साधन है। आध्यात्म मरणशील मानव को अमरत्व पद प्राप्त करा देता है। समस्त जड़–चेतन का जन्म परमेश्वर से हुआ है। एक मूल गर्भ से कण–कण की उत्पत्ति के इस सिद्धान्त में सभी प्राणियों में मूलभूत एकता का बोध निहित है। यही धारणा हमारे 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का आधार भी है। यह संसार उसी मूलकारण व मूलजनक से शक्ति प्राप्त करता है, उसी के प्रकाश से प्रकाशित है तथा उसी की अहैतुकी कृपा से स्थित है। 'ईशावास्योपनिषद्' में कहा गया है –

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम्।

अर्थात् सभी पदार्थ किसी एक व्यक्ति के नहीं है, ये सब परमेश्वर के हैं। इन्हें अपना मानना आसक्ति है। अतएव आसक्ति त्यागकर ही इन पदार्थों का भोग करना चाहिए।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानु पश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजु गुप्सते।।

(ईशावास्योपनिषद् 6)

मनुष्य प्राणिमात्र में केवल परमेश्वर को देखता है वह फिर किसी व्यक्ति से घृणा या द्वेष कैसे कर सकता है।

यस्मिन् सर्वाणि भूतात्मा सैवाभूद् विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।

(ईशा. 7)

जब मनुष्य को सर्वत्र परमेश्वर ही दिखायी देता है तो उस समय उसके अन्तःकरण में शोक, मोह आदि स्वार्थी विचार नष्ट हो जाते हैं। वह तो भगवदानन्द में डूबा रहता है।

उपनिषदों में मानव जीवन के लिए दो मार्ग बताये गये हैं:

श्रेयः मार्ग तथा प्रेयः मार्ग। श्रेयः मार्ग कल्याण का मार्ग है तथा प्रेयः मार्ग सुख भोग का मार्ग है। स्पष्ट है कि पहला मार्ग काँटों से भरा कठिन मार्ग है और दूसरा मार्ग फूलों का मार्ग दिखायी देता है। दूसरे शब्दों में शास्त्रों में प्रथम को निवृत्ति मार्ग व दूसरे को प्रवृत्ति मार्ग कहा गया है। हमारी यह धारणा पाश्चात्य देशों की अवधारणा से सर्वथा भिन्न है। वहाँ इन दोनों मार्गों में परस्पर कोई तालमेल नहीं है जबकि गीता का निष्काम कर्मयोग इन दोनों ही मार्गों का मंजुल समन्वय है। गीता कर्म के त्याग की बात नहीं करती, अपितु कर्म के फल से सन्यास का उपदेश करती है। गीता के अनुसार कर्म में प्रवृत्ति अनिवार्य है जो होनी चाहिए, किन्तु कर्मफल से निवृत्ति होनी चाहिए। जीवन के प्रथमार्ध काल में मनुष्य भोग से समृद्ध होता है जबकि जीवन के उत्तरार्ध में वह भोग के परित्याग से समृद्ध होता है। प्रवृत्ति मार्ग में मनुष्य संसार में लिप्त रहता है। जिसके कारण वह ईश्वर से विमुख रहता है, किन्तु निवृत्ति मार्ग में वह ईश्वर के सम्मुख होता है जिसके फलस्वरूप वह सांसारिकता से विमुख रहता है। भोग-वैराग्य का यही मंजुल समन्वय भारतीय आध्यात्मिकता का मुख्य उद्देश्य रहा है। यही हमारी आध्यात्मिक विजय रही है।

यह अध्यात्म मार्ग जीवन को भौतिकवाद से ऊपर उठा देता है। मनुष्य सर्वत्र तथा समस्त जड़-चेतन में एकता का दर्शन करता है। यह एकता का दर्शन मनुष्य को फिर दुःख से अभिभूत नहीं करता। हमारी आस्था है कि ईश्वर का स्वरूप प्रकाश एवं आनन्दमय है, वह परमेश्वर आनन्द का अतल, पारहीन महासागर है, जिसमें जीव जब एक बार प्रविष्ट हो जाता है तो उसमें डूबकर आनन्द विह्वल हो उठता है फिर उसे दुःख और मृत्यु न सताते हैं न डरा सकते हैं। मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। वह तो हाड़माँस के शरीर का परित्याग मात्र है। मनुष्य की आत्मा अजर व अमर है। वह आत्मा कर्म के संस्कारों के अनुसार शरीर रुपी वस्त्र ओढ़कर जन्म लेता रहता है। आत्मा की यह यात्रा कभी समाप्त नहीं होती। यही आत्मा की 'अनन्तता' है और यही उसकी 'अमरता'।

हमारे यहाँ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ माने गये हैं। आध्यात्मिक वृत्ति हमें धर्म और मोक्ष दोनों को प्राप्त करने की प्रेरणा देती है। इन चारों पुरुषार्थों में आपस में सामंजस्य लाना ही जीवन की कसौटी है। हमारे शास्त्र आध्यात्मिकता की शिक्षा से ओतप्रोत हैं आध्यात्मिक भाव के कारण ही मनुष्य में संवेदना, सहानुभूति, उदारता और सह अस्तित्व के भावों का जन्म होता है।

उपनिषदों में आत्मज्ञान, मोक्ष एवं ब्रह्मज्ञान प्रतिपादित किये गये हैं। बाद के भारतीय साहित्य में इन्हें 'आत्मविद्या' या 'ब्रह्मविद्या' के नाम से जाना गया है। इस विद्या का ज्ञान होते ही सभी अनर्थों को जन्म देने वाले क्रियाकलापों का नाश हो जाता है। इसके कारण अविद्या

(अज्ञान) के बन्धन टूट जाते हैं और ब्रह्मविद्या की प्राप्ति हो जाती है।

हमारे तत्वज्ञाता महर्षियों ने जीवन–जगत् की वास्तविकता पहचानने के लिए मूलभूत शक्तियों को खोजकर व उन पर चिन्तन–मनन कर जो जीवन–दर्शन बनाया है उन्हीं का निष्कर्ष उपनिषदों में है। ऋषियों ने जन्म, स्थिति एवं नाश के कारणों का अनुसन्धान कर बतलाया है कि यह ऐसी तिकड़ी है जिसका न ओर है न छोर, न आदि न अन्त। इस तिकड़ी का संचालक एक महानियन्ता परमेश्वर है जो अक्षुण्ण, अविकृत और अखण्ड है। यह परमपिता 'परमेश्वर' 'परब्रह्म' आदि नामों से पुकारा जाता है। कण–कण में, व्यक्ति व समष्टि में इसी परम शक्ति का सर्वदा निवास रहता है। आत्मा की यह खोज विश्व इतिहास में अभूतपूर्व है। इसे प्राप्त करने का एक मात्र साधन ज्ञान है और ज्ञान का निरूपण उपनिषदों में किया गया है। कितने विदेशी शासक एवं सभ्यताएँ भारत में आये, किन्तु उनकी प्रचण्डता व बर्बरता को हमारी सर्वसहिष्णु संस्कृति ने बड़ी आसानी से आत्मसात् कर लिया।

उपनिषदों में माया शक्ति की अभिनव कल्पना की गयी है। माया ऐसी अद्भुत शक्ति है जो विश्व को उगिल कर देती है। माया को ज्ञान अथवा विवेक की शक्ति से पहचाना जा सकता है। ज्ञान अर्थात् विद्या के परा तथा अपरा दो रूप बतलाये गये हैं। अपरा कर्म प्रधान विद्या है जिसका फल कालान्तर में मिलता है। परा विद्या ब्रह्म विद्या है। ब्रह्मविद्या के अभाव को अविद्या कहते हैं। यही अविद्या जीवन में बन्धन और आसक्ति का कारण है। उपनिषदों में विद्या, अविद्या, आत्मा, परमात्मा और ब्रह्म–माया के परस्पर विरोधी सम्बन्धों पर तर्क के आधार पर ऐसी एकता स्थापित की गयी है जो भारत के समन्वयवादी होने के मूल में रही है। यही मौलिक एकता वेदान्त का अद्वैत है जिसके अनुसार सभी वस्तुएँ सत्तावान् हैं तथा जिनमें एक ही परमेश्वर का निवास है। हमारे पूर्वज आध्यात्मिकता और परम तत्त्व की खोज में यूनान एवं समस्त यूरोपीय चिन्तकों से बहुत आगे निकल गये थे। हमारा 'अमरत्व' का जीवनदर्शन कल्याणमय विश्व की एक अतिविशाल एवं अतिव्यापक मंगलकामना है। जिससे संसार के सभी दार्शनिक व मनीषी बिना प्रभावित हुए नहीं रह सके।

● ● ●

शोक संवेदना

हमारे पुराने गुरुभाई इलाहाबाद निवासी श्री रविनारायण मालवीय जी का 16 जुलाई 2012 को देहावसान हो गया है। वे 85 वर्ष के थे। उनके बिछुड़ जाने पर हम सभी को दुःख हो रहा है। श्री प्रभुजी उनकी आत्मा को शान्ति दें तथा अपने चरणों में स्थान दें।

– सम्पादक सिद्धयोग

आध्यात्मिक प्रगति

– प्रो. ऋषिराम शर्मा

पुरुष तथा प्रकृति के रहस्यों के ज्ञान में प्रगति को ही आध्यात्मिक प्रगति कहा जाता है। भगवान श्रीकृष्ण ने प्रकृति को क्षेत्र तथा पुरुष को क्षेत्रज्ञ कहा है कि देवात्मशक्ति माया ने सृष्टि की उत्पत्ति के लिए माया के आवरण में क्षेत्रज्ञ तथा क्षेत्र का संयोग किया है ताकि

''स्वस्वामीशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोग''

(योगदर्शन 2/23)

अर्थात् प्रकृति तथा पुरुष के स्वरूप (ऐश्वर्य) की उपलब्धि के निमित्त प्रकृति का क्षेत्र (दृश्य) तथा पुरुष का क्षेत्रज्ञ (दृष्टा) के रूप में संयोग हुआ है। इसीलिए गीता में कहा गया है कि

क्षेत्रज्ञमपि तु मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत्तद् ज्ञानं मतं मम।।

(गीता 13/2)

अर्थात् समस्त क्षेत्रों (जड़ तथा चेतन सृष्टि) में क्षेत्रज्ञ स्वयं पुरुष (परमात्मा) ही है। क्षेत्र तथा क्षेत्रज्ञ का भेदज्ञान ही परमात्मज्ञान है। इसी उद्देश्य के लिए यह संयोग हुआ है। दृश्य की परिभाषा में महर्षि पतंजलि का भी यही कथन है कि –

''प्रकाशस्थितिक्रियाशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्''

(योगदर्शन 2/18)

अर्थात् इस त्रिगुणात्मक तथा पंचभूतात्मकस्थूल तथा सूक्ष्मभावों वाले दृश्यजगत का उद्देश्य भोक्ता को भोग तथा जिज्ञासु को मोक्ष प्रदान करना है। मायापाश से जीवात्मा (भोक्ता) की मुक्ति अथवा क्षेत्रज्ञ की परमात्मभाव में स्थिति को ही 'मोक्ष' कहते हैं। प्रकृति तथा पुरुष में माया तथा मायावी जैसा सम्बन्ध है, शास्त्र का कथन है कि –

मायां तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।
शक्तिद्वयं हि मायायाः विक्षेपावृत्तिरूपकम्।।
विक्षेपशक्तिः लिंगादिब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्।
आवरणेत्यपरा शक्तिः या संसारस्य कारणम्।।
एतस्मात् जायते प्राणः मनो सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।
एकमेव अद्वितीयं ब्रह्मासीत् तस्मात् अव्यक्तमेवाक्षरः।
तस्मात् अक्षरात् महत् महतो वै अहंकारः।।

तस्मादेव अहंकारात् पंचतन्मात्राणि तेभ्यः भूतादीनिति।।
प्रभवः सर्वभावानां सतामिति विनिश्चयः।
सर्वं जनयति प्राणः चेतोंशून पुरुषः प्रथक्।।
अनादिसम्बन्धवत्या क्षेत्रज्ञोऽयं अविद्यया।
युक्तः पश्यति भेदेन ब्रह्मतत्वम् आत्मनि स्थितम्।।

अर्थात् हम तथा हमारा यह संसार परमात्मा की माया का खेल है और स्वयं परमात्मा इसका मायावी है। ब्रह्मसूत्र का भी यही कथन है कि *'लीला कैवल्यं तच्छुते:'* यानि श्रुति का यह प्रमाण है कि संसार लीलामात्र है। अविद्या माया की दो प्रमुख शक्तियाँ हैं। प्रथम विक्षेपशक्ति है जोकि त्रिगुणात्मक है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की कारणभूता है तथा दूसरी आवरणशक्ति है जोकि असत्य तथा कल्पित संसार को सत्य दिखाती है। उदाहरण के लिए हमारा स्वप्न का संसार माया का प्रतिनिधि हमारा मन ही बनाता है और उसमें गुप्त माया उसको सत्य दिखाती है। वेदवाणी का प्रमाण है कि –

यथा स्वप्ने द्वयाभासं स्पन्दते मायया मनः।
तथा जागृद्धयाभासं स्पन्दते मायया मनः।।

(माण्डुक उप. आ. 29)

अर्थात् जैसे माया के द्वारा हमारा मन स्वप्नसंसार की रचना कर उसे सत्य भासित करता है वैसे ही माया के द्वारा हमारा मन ही संसार का स्फुरण तथा सत्यज्ञान का आभास कराता है, क्योंकि जब अचेतावस्था में मन प्राण में लीन हो जाता है तब संसार भी भासित नहीं होता।

संसार की उत्पत्ति का माया द्वारा निर्धारित एक गुणों का क्रमपरिणाम है। इसीलिए महर्षि पतंजलि का कथन है कि –

''परिणामैकत्वं वस्तुतत्वम्''

अर्थात् प्रत्येक पदार्थ गुणों का एक निश्चित क्रमपरिणाम है। यह क्रमपरिणाम हेतु तथा फल के रूप में दृश्यजगत का निर्माण करता है। वेदवाणी का इसी दिशा में संकेत है कि –

यावत्हेतुफलावेशः तावत्हेतुफलोद्भवः।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसारं न प्रपद्यते।।
आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेत् यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति सः तत्वोऽन्यः।।

अर्थात् जब तक चित्त में कर्म तथा कर्मफल का आग्रह है तब तक कारणकार्यरूप संसार प्राप्त होता रहता है। जब चित्त से कर्म तथा कर्मफल के आग्रह का रागद्वेष समाप्त हो

जाता है तब संसार के जन्म–मरण से मुक्ति मिल जाती है। जब तक गुणप्रेरित कर्मों का मायिक बन्धन है तथा मायाजनित अनन्त भाव चित्त में अविद्या का आवरण रचते रहते हैं तब तक जीवभाव की भ्रान्ति बनी रहती है। परमात्मसाक्षात्कार के बाद जब उनका अभाव हो जाता है तब विशुद्ध चित्त में जीवभाव की भ्रान्ति नष्ट हो जाती है और केवल कूटस्थ तथा निर्गुणात्मक परमात्मभाव से चित्त प्रकाशित हो जाता है। अविद्या के आवरण में सभी जीव अनादि काल से क्षेत्रज्ञ बनकर शरीरधारी बन गये हैं और प्राकृतिक शक्तियों के साथ संयुक्त होकर बुद्धिसंवेदना के कारण सुखदु:खादि के भावों में लिप्त है। प्राण से संयुक्त होकर एक ही आत्मा आकाश की भाँति अनेक शरीररूपी घटाकाशों में विभक्त है। जैसे ही आध्यात्मिक साधना की सिद्धि पूर्ण हो जाती है और आत्मा तथा प्राकृतिक तत्वों का भेदज्ञान हो जाता है तब स्वत: ही परमात्मसाक्षात्कार हो जाता है इस स्थिति को प्राप्त करने के लिए अनेकों जन्मों की निरन्तर साधना की अपेक्षा है। इसी को आध्यात्मिक प्रगति कहते हैं। इस लक्ष्य को पाने के लिए अपने–अपने स्वभाव के अनुकूल सूत्र में व्यक्त किसी न किसी मार्ग पर अग्रसर होना होगा। इन मार्गों पर माया ने गुणबन्धन तथा कर्मबन्धन के अनन्त अवरोध बिछाये हुए हैं। इन अवरोधों के कारण ही जीवात्मा तथा परमात्मा में भेदसम्बन्ध है। यह भ्रान्तिमूलक भेदज्ञान का मुख्य कारण है शरीरों में तदाकारता की आसक्ति तथा अहंभाव। यही मायिक बन्धन चित्त पर चित्तवृत्तियों का मलावरण तैयार करता है और जब तक यह आवरण नष्ट नहीं होता तब तक आत्मज्ञान सम्भव ही नहीं। बुद्धियोधात्मक आत्मा का स्थूलशरीर तथा सूक्ष्मशरीर में अहंभाव के द्वारा एकात्मता का सम्बन्ध है। इसी कारण –

भ्रान्तिज्ञानेन पश्यन्ति जगत्रूपं अयोगिन:,
ये तु ब्रह्मविद: विशुद्धचेतस: ते अखिलं जगत्।
ज्ञानात्मकं पश्यन्ति त्वद्रूपं परमेश्वर।।

अर्थात् योगसिद्धि के बिना माया की भ्रान्ति के कारण ही परमात्मा का सर्वव्यापी स्वरूप ही संसार के रूप में दिखाई दे रहा है। जो विशुद्ध अन्त:करण वाले ब्रह्मज्ञानी हैं, उन्हें यह जगत नहीं अपितु सर्वत्र व्याप्त परमात्मा ही दिखता है। यह दिखना भी कथनमात्र है, वास्तविकता नहीं, क्योंकि –

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम्।। (योगदर्शन)
ते सर्वगं सर्वत: प्राप्य धीरा: युक्तात्मान: सर्वमेव आविशन्ति ।।

(मुण्डक 3/2/5)

विभेदजनके अज्ञाने नाशमात्यन्तिकं गते।
आत्मनो ब्रह्मणो भेदं असतं क: पश्यति।।

(विष्णुपुराण)

अर्थात् योगसाधना से अस्मितानुगत समाधि की सिद्धि के बाद योगी को चित्तनिर्माणादि अचिन्त्य शक्तियाँ प्राप्त हो जाती हैं। जब इस योगेश्वर्य से वैराग्य हो जाने पर अविद्याजनित अहंकार के बीज का भी नाश हो जाता है तब द्वैतभाव की भ्रान्ति भी नष्ट हो जाती है तथा अद्वैतभाव में केवल परमात्मा का स्वरूप रहता है। न कोई दृष्टा है और न दृश्य, न कोई भोक्ता है और न भोग्य, क्योंकि –

''भोक्ता भोज्यं प्रेरितारं च मत्वा त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्मवै तत्।।''

अर्थात् भोक्ता, भोज्य तथा परमात्मा यह तीनों एक अद्वितीय ब्रह्म ही हैं, द्वैतसृष्टि तो प्रकाश के आने पर अंधकार की भांति नष्ट हो जाती है। जैसे आँख को अपने को देखने के लिए दर्पण की जरूरत होती है वैसे ही –

''अस्मिन् विशुद्धे विभवति एषः आत्मा ''

अर्थात् आत्मा विशुद्ध चित्तरूपी दर्पण में प्रकाशित होती है। इसीलिए आध्यात्मिक प्रगति के लिए चित्तरूपी दर्पण को विशुद्ध बनाना एकमात्र लक्ष्य है। शास्त्र का कथन है कि –

यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितरः इतरं पश्यति।
यत्र सर्वमात्मैव भवेत् तत्र कं केन पश्येत्।।

(ब्रह. उप. 2/4/4)

नान्योऽतोस्ति दृष्टा, नान्योऽतोस्ति श्रोता।
नान्योऽतोस्ति मन्ता, नान्योऽतोस्ति विज्ञाता।।

(ब्रह.उप. 3/7/23)

''येन सर्वमिदं विजानाति तं केन विजानीयात्''

अर्थात् जहाँ एक से अधिक मनुष्य होते हैं वहीं एक दूसरे को देख सकते है किन्तु जहाँ आत्मा के अतिरिक्त अन्य कुछ है ही नहीं, वहाँ कौन किसको देखे। आत्मा के अतिरिक्त न तो अन्य कोई दृष्टा है, न श्रोता है, न मन्ता है और न कोई विज्ञाता है, तब उसको देखने या जानने वाला कोई है ही नहीं। इस समस्या का हल यही है कि वह स्वयं ही अपने आपको जाने, कैसे जाने इस पर शास्त्र का कहना है कि –

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानं आत्मना।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे।।
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्ति आत्मनि अवस्थितम्।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्ति अचेतसा।।
ऐषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यः यस्मिन् प्राणाः पंचधाः सम्विवेशः।
प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन् विशुद्धे विभति एषः आत्मा।।

सत्येन लभ्यः एषऽत्मा सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रः ततस्त पश्यति निष्कलं ध्यायमानः॥

अर्थात् आत्मतत्व की अनुभूति विशुद्ध बुद्धि में ध्यानसमाधि के द्वारा, या शक्तिपात से प्रदत्त ज्ञानज्योति के द्वारा सम्भव है अथवा कर्मयोग का पालन करते हुए शुद्ध हुए अन्तःकरण में प्रकाशित प्रतिबिम्ब के द्वारा परमात्मसाक्षात्कार सम्भव है। इसीलिए योगाभ्यास में लगे हुए योगियों के चित्त से जब पंचक्लेशों तथा अज्ञान से जनित कर्मसंस्कारों का नाश होने पर उन्हें ऋतम्भरा प्रज्ञा में आत्मदर्शन होते हैं। किन्तु यत्न करते हुए भी जब तक चित्त से माया का संस्काररूपी मलावरण नष्ट नहीं हो जाता तब तक आत्मतत्व की अपरोक्ष अनुभूति नहीं हो पाती। यह परम सत्य है कि आत्मसाक्षात्कार केवल चित्तरूपी निर्मल दर्पण के माध्यम से ही होता है, किन्तु जब तक प्राणी के द्वारा मनोवृत्तियों के रूप में जीवों का अन्तःकरण दूषित है तब तक तो संसार का दृश्य ही चित्त में प्रकाशित रहता है। इसीलिए अन्तःकरण को शुद्ध करने के लिए निरन्तर अनेक मनुष्य योनियों में ब्रह्मचर्य के धर्मों का पालन करते हुए वेदान्तविज्ञान के अर्थों को सुनिश्चित करते हुए आध्यात्मिक ज्ञान की साधना आवश्यक है तभी निर्विकल्प मन में शुद्ध तथा ज्योतिस्वरूप आत्मा का अनुभव होता है और समाहित बुद्धि आत्मतत्व का अनुभव करती है।

यह तो स्पष्ट है कि आध्यात्मिक प्रगति के लिए चित्त को निर्मल करना परमावश्यक है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कौन से उपाय हैं। किसी भी कार्य का नाश सदैव उसके कारण में गुप्त रहता है। चित्त पर जो मलावरणरूपी कार्य हुआ उसके मुख्य कारण कर्माशय तथा पंच क्लेशों के वासनासंस्कार हैं। यही चित्तवृत्तियों के रूप में आवरण को जन्म देती हैं। इनके नाश का उपाय है–

"अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः"

अर्थात् योगसाधना तथा वैराग्य की भावना से इनका नाश होता है। योगसाधना से तात्पर्य है अष्टांगयोग, भक्तियोग तथा ज्ञानयोग का निरन्तर सत्कारपूर्वक अभ्यास। वैराग्य से तात्पर्य है कि साधना के परिणामस्वरूप अनुभूतियों तथा विवेक के आधार पर चित्त में सांसारिक भोगों की प्रति उपरामता। इस अभ्यास तथा वैराग्य के द्वारा चित्त में परिवर्तन होता जाता है। इसका भगवान श्रीकृष्ण ने स्वयं वर्णन किया है कि –

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन् आत्मनि तुष्यति॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यं अतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।

यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते।।
शनैः शनैः उपरमेत् बुद्धया धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत्।।
प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्।।
युंजन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शं अत्यन्तं सुखमश्नुते।।

अर्थात् हमारा यह चित्त अनादि काल से माया के आवरण में है और इसमें असंख्य वासनाओं के संस्कार संचित हैं तथापि नवीन कर्मसंस्कारों को ग्रहण करने की इसकी असीमित क्षमता है। इसलिए जन्म–जन्मान्तर में योगसाधना करते–करते जब यह सांसारिक आकर्षण से विरक्त हो जाता है तभी अपने निर्मल तथा विशुद्ध रूप में इसमें सर्वव्यापी आत्मतत्व प्रकाशित होता है। जैसे पारदर्शी शीशे में सूर्य का प्रतिबिम्ब सूर्य की भाँति प्रकाशवान दिखता है वैसे ही विशुद्ध बुद्धि में आनन्दस्वरूप परमात्मा का आत्यन्तिक सुख अनुभूति में आता है जोकि इन्द्रियों का विषय नहीं है। इस सुख की अनुभूति के पश्चात् चित्त उसी में रमण करता रहता है। इस अक्षय सुख की अनुभूति के बाद पुनः संसार के क्षणिक सुख तुच्छ हो जाते हैं। श्रुति का प्रमाण है कि –

स एव परमानन्दः एतस्यैव आनन्दस्थानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति।।

अर्थात् परमात्मा का स्वरूप आनन्द का समुन्दर है, उसके आनन्दस्वरूप में स्थित सभी प्राणी उसकी एक बूंद में जीवित रहते हैं।

अतः विवेकपूर्वक धीरे–धीरे धैर्य के साथ मन को संसार के क्षणिक सुखों से निरासक्त कर चित्त को आत्मतत्व में ध्यानस्थ कर अन्य किसी भी विषय को चित्त में चिन्तन न करे। जब चित्त बाह्य चिन्तन त्याग कर अपने आत्मस्वरूप में रमण करने लगेगा तब स्वतः ही अक्षय सुख की अनुभूति होगी। धीरे–धीरे रजोगुण तथा तमोगुण दोनों शान्त हो जायेंगे तथा शुद्ध सतोगुण की वृद्धि होती जायेगी। शुद्ध सतोगुण में परमात्मा का स्वरूप प्रकाशित होने लगता है। इस तरह निरन्तर अभ्यास करते रहने से जब योगी के चित्त से रजोगुण तथा तमोगुण के विकारों का मल धुलने लगता है और आध्यात्मिक संस्कार चित्त में प्रकाशित हो जाते हैं, तब परमात्मा के दिव्य सच्चिदानन्द स्वरूप की स्वतः अनुभूति होने लगती है।

• • •

ग्राहकों को सूचना

जो गुरु भाई बहिन सन् 1998 से पूर्व से सिद्धयोग पत्रिका के ग्राहक हैं उनसे निवेदन है कि उन्हें 13–14 वर्षों से पत्रिका भेजी जा रही है। कागज के दाम अत्यधिक बढ़ रहे हैं। अतः उन्हें पुनः रु. 900/– शुल्क भेजना चाहिए ताकि उनकी सदस्यता बनी रह सके। अन्यथा पत्रिका रोकी जा सकती है। निम्न सदस्य हैं जिन्हें शुल्क भेजना है–

1. श्री कृष्ण शर्मा – गिरावर, जि. रोहतक (हरि.)
2. सन्तोष कु. बत्सी – गुड़गाँव
3. गजराज सिंह – मगला, कानपुर देहात
4. डॉ. विजय सिंह – गोरखपुर
5. केशव उपाध्याय – वाराणसी
6. दामोदर प्रसाद ओटवाणी – झाँसी
7. बल्देव कु. कुकरेजा – झाँसी
8. रमेश मेहता – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
9. श्रीमति सुदर्शन कुमारी – फरीदाबाद (हरि.)
10. श्रीमति विद्या कौशल – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
11. विश्वनाथ दयाल – कानपुर
12. आर.पी. दुबे – गोरखपुर
13. डॉ. कैलाशनाथ शर्मा – वाराणसी
14. आपरेटर रोहतास शर्मा – जि. रोहतक (हरि.)
15. शान्ति हेण्डलूम – पानीपत (हरि.)
16. श्री ब्रह्मचारी बृजमोहन वशिष्ठ – अलीगढ़
17. बुदबुद ठेकेदार – वाराणसी
18. दयालु मुनि जी – भिवानी (हरि.)
19. जय प्रकाश बंसल – पानीपत (हरि.)
20. सत्य प्रकाश गुप्ता – भोपाल (म.प्र.)
21. के.के. शर्मा, जनकपुरी, नई दिल्ली
22. नरेन्द्र चौधरी – शाहदरा दिल्ली
23. गनेश कुमार– रानीबाग, दिल्ली
24. विनय सिजरिया – झाँसी
25. अशोक वर्मा – दिल्ली
26. रामावतार सुगन्ध – दिल्ली
27. विनय कुमार अग्रवाल – दिल्ली
28. विद्यारण्य – दिल्ली
29. शिवानी नागेश – अहमदाबाद (गुजरात)
30. सज्जन कुमार अग्रवाल – धनबाद, झारखण्ड
31. अचल चावला – दिल्ली
32. प्रो. पी.डी. शर्मा –मुम्बई
33. वी.के. सक्सैना – भिण्ड (म.प्र.)
34. विवेक बंसल – गाजियाबाद (उ.प्र.)
35. पवन कुमार पुरी – काँगड़ा
36. विजय पुरी – काँगड़ा
37. हरीश पठानिया – काँगड़ा
38. कुलदीप सचदेवा – काँगड़ा
39. आर. के. शर्मा – काँगड़ा
40. डॉ. पुष्प राज शर्मा – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
41. श्रीमति अरुणा सिंह – नई दिल्ली
42. कुन्दनलाल अग्रवाल – रुद्रपुर, नैनीताल
43. एम. डी. कात्रे – झाँसी
44. मानचन्द गुप्ता – कुरुक्षेत्र (हरि.)
45. उमाशंकर गुप्ता – झाँसी
46. साधुराम – कालमण्डी रोहतक
47. धर्म सिंह हर्षवर्धन – दिल्ली
48. खगेश कुमार – गोहाना सोनीपत
49. सदाशिव मन्दिर – काँगड़ा
50. नन्दलाल शर्मा – मण्डी, हिमाचल प्रदेश
51. नरेश चन्द दास – कटक, उड़ीसा
52. प्रदीप कुमार पालुखेड़ा – अलीगढ़
53. कैलाश चन्द सर्राफ – कोलकाता
54. रमेश चन्द शर्मा – हिसार
55. हरे कृष्ण गोस्वामी – दिल्ली
56. गुलशन राय पाहूजा – दिल्ली
57. अंजू अरोड़ा – नई दिल्ली
58. नरेन्द्र कुमार भारद्वाज – इन्दौर
59. प्रताप वाच हाउस – नजफगढ़, दिल्ली
60. एन. आर. यादव – वाराणसी
61. प्रदीप कुमार – कन्नौज
62. साहब सिंह सेंगर – जालौन
63. विनयलता – कोलकाता
64. भरत कुमार मिश्र – कानपुर
65. जे. एस. गर्ग – जीन्द, हरियाणा

(शेष अगले अंक में देखें)

गीता जी के विविध पालनीय बिन्दु

1. जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था तथा व्याधियों में दुःखरूप दोषों का बार–बार देखना।
2. प्रकृति के गुणों द्वारा विचलित नहीं होना; क्योंकि गुण ही गुणों में बरत रहे हैं।
3. ब्रह्मचर्य का पालन करना।
4. देवता, ब्राह्मण, गुरुजन और जीवन्मुक्त महापुरुषों का यथायोग्य पूजन करना, पूज्य भाव रखना। जीवन्मुक्त महापुरुषों से सुनकर उपासना करना।
5. मन को सदा प्रसन्न रखना। अनुकूलता में सम रहना तथा व्यथित न होना। कोई भी परिस्थिति आये, ऐसा समझें कि आने–जाने वाली और अनित्य है, इसलिए सहन करें तथा इस मन्त्र का जप करें। 'आगमापायिनोऽनित्याः।'
6. यथायोग्य नियत तिथि, वार आदि को अन्य देवताओं का निष्कामभावपूर्वक पूजन–अर्चन करना।
7. सम्पूर्ण कर्म प्रकृति के गुणोंद्वारा किये जाते हैं। अहंकार से मोहित अन्तःकरण वाला 'मैं कर्ता हूँ' ऐसा मान लेता है। अतः किसी भी कार्य में अपने को कारण नहीं मानें, केवल निमित्तमात्र मानें।
8. शास्त्रविधि के अनुसार चलें। कल्याणकारी शास्त्रों को आदर्श मानें।
9. सम्पूर्ण क्रियाएँ भगवान् को अर्पण करनी चाहिए। जो कुछ करें, जो कुछ खावें, जो कुछ हवन करें, जो कुछ दान दें, जो कुछ तप करें– सब कुछ प्रभु को अर्पण करें।
10. ज्यादा नींद नहीं लें तथा आवश्यकता से कम नींद भी न लें। आवश्यकता से अधिक भोजन न करें तथा जानकर भूखे न रहें। पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रत शास्त्रोक्त होने से करने चाहिए।

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

जितने मत उतने पथ। अनन्त मत हैं, और अनन्त पथ। एक को बलपूर्वक पकड़ना पड़ता है। छत पर जाने की चाह है, तो जीने से भी चढ़ सकते हो; बाँस की सीढ़ी लगाकर भी चढ़ सकते हो। परंतु एक पैर इसमें और दूसरा उसमें रखने से नहीं होता। एक को दृढ़ भाव से पकड़े रहना चाहिए। ईश्वर लाभ करने की इच्छा हो तो एक ही रास्ते पर चलना चाहिए और दूसरे मतों को भी एक–एक मार्ग समझना। यह भाव न हो कि मेरा ही मार्ग ठीक है, और सब झूठ है; द्वेष न हो। किसी की निन्दा न किया करो – एक कीड़े की भी नहीं।

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ________________

____

____

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री मनमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. रामलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) रामलाल शर्मा